जगत्-गुरु
(सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम)

अबू-ख़ालिद

अनुवाद

नाहीद अख़्तर

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।'

कुछ किताब के बारे में

जगत-गुरु (सल्ल॰) दरअस्ल 'हादी-ए-आज़म (सल्ल॰)' (उर्दू) का नया हिन्दी तर्जमा है। 'हादी-ए-आज़म' किताब जनाब अबू-ख़ालिद साहब (एम॰ ए॰) ने ख़ास तौर पर बच्चों के लिए लिखी थी, जो बहुत ज़्यादा पसंद की गई और बहुत-से स्कूलों और मदरसों में यह किताब पढ़ाई जा रही है।

इस किताब का इससे पहले जो हिन्दी तर्जमा छप रहा था, वह शहबाज़ साहब द्वारा किया गया था, जिसके अब तक चार एडीशन छप भी चुके हैं। उस तर्जमे की ज़ुबान काफ़ी मुश्किल रखी गई थी और शायद इसकी वजह यह थी कि तर्जमा करते वक़्त बड़ों तथा पढ़े-लिखे लोगों को सामने रखा गया था।

अब चूँकि बड़े लोगों के लिए हिन्दी ज़ुबान में प्यारे नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी पर काफ़ी किताबें छप रही हैं, इसलिए ख़याल हुआ कि बच्चों को सामने रखते हुए इस किताब का नया हिन्दी तर्जमा कराया जाए। अल्लाह का शुक्र है कि इस किताब का यह पाँचवाँ जदीद एडीशन आसान ज़ुबान में पेश किया जा रहा है। हमें उम्मीद है कि यह किताब बच्चों को प्यारे नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी के बारे में सही मालूमात देगी, उनके अन्दर प्यारे नबी (सल्ल॰) की मुहब्बत पैदा करेगी और आप (सल्ल॰) के बताए हुए रास्ते पर उनको चलने के लिए उभारेगी।

उर्दू में यह किताब दो हिस्सों में अलग-अलग छपी है। लेकिन हिन्दी में दोनों को इकट्ठा कर दिया गया है।

—नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

सेक्रेट्री

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली-25)

कुछ शब्दों का मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे शब्द आएँगे, जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है। किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन शब्दों की मुकम्मल शक्ल और उनका मतलब समझ लिया जाए, ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोई परेशानी न हो। ऐसे शब्द ये हैं—

अलैहि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, 'अलैहिस्सलाम'। यानी 'उनपर सलामती हो!' नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए ये शब्द बढ़ा देते हैं।

रज़ि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, 'रज़ियल्लाहु अन्हु'। इसके मानी हैं अल्लाह उनसे राज़ी हो! 'सहाबी' के नाम के साथ यह इज़्ज़त और मुहब्बत की दुआ बढ़ा देते हैं।

सहाबी : उस ख़ुशक़िस्मत मुसलमान को कहते हैं, जिसे नबी (सल्ल॰) से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। सहाबी की जमा (बहुवचन) सहाबा है और मुअन्नस (स्त्रीलिंग) सहाबिया है।

रज़ि॰ : अगर सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो 'रज़ियल्लाहु अन्हा' पढ़ते हैं, और अगर सहाबा के लिए इस्तेमाल हुआ हो तो 'रज़ियल्लाहु अन्हुम' कहते हैं और अगर सहाबियात के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो 'रज़ियल्लाहु अन्हुन्न' पढ़ते हैं।

सल्ल॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम'। इसका मतलब है, 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे!' हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए यह दुआ बढ़ा देते हैं।

जगत्-गुरु (सल्ल॰)

'सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए है, जो हमारा पैदा करनेवाला और इस दुनिया का अस्ल मालिक है। फिर दुरूद और सलाम उस प्यारे नबी (सल्ल॰) पर जिसने इनसानों को सीधा रास्ता दिखाया और अल्लाह के दीन पर चलना सिखाया।'

पैदाइश

मुस्लिम समाज में रबीउल-अव्वल का महीना बड़ा मुबारक समझा जाता है। यह महीना हमारे लिए और सच पूछो तो सारे इनसानों के लिए कभी न भूलने और हमेशा याद रखने का महीना है।

अब से चौदह सौ साल पहले इसी महीने की नौ तारीख़ को सोमवार के दिन सुबह के समय प्यारे नबी मुहम्मद (सल्ल॰) इस दुनिया में आए थे। मिस्र के एक आलिम महमूद पाशा फ़लकी ने हिसाब लगाकर बताया है कि उस दिन अंग्रेज़ी महीने अप्रैल की 20 तारीख़ और सन् 571 ईसवी था।

अब से चौदह सौ साल पहले अरब और सारी दुनिया का क्या हाल था, अगर तुम्हें मालूम हो और उसपर ग़ौर करो, फिर यह देखो कि मुहम्मद (सल्ल॰) ने इस बिगड़ी हुई दुनिया को कैसे सँवारा, तो तुम्हारी समझ में आएगा कि यह दिन सारे इनसानों और पूरी दुनिया के लिए कितना बड़ा और कैसी ख़ुशी का दिन है।

और आज भी जबकि चारों तरफ़ लूट-मार, चोरी, छल-कपट, शराबख़ोरी, बेशर्मी और बदकारी का अंधेरा छाया हुआ है, यही एक दिन ऐसा है, जो हमें एक ऐसी हस्ती की याद दिलाता है, जो रहती दुनिया तक अंधेरे को उजाले में बदलती रहेगी। दूर-दूर तक फैले हुए अंधेरे में रौशनी का अकेला मीनार!!

आप (सल्ल॰) पैदा हुए। आप (सल्ल॰) के दादा मियाँ अब्दुल-मुत्तलिब ने आप (सल्ल॰) का नाम 'मुहम्मद' रखा। लोगों ने पूछा, यह नाम क्यों रखा? बोले, "मैं चाहता हूँ कि मेरे पोते की सारी दुनिया तारीफ़ करे।" अल्लाह ने उनकी आरज़ू पूरी की।

हलीमा सादिया की गोद में

उस ज़माने में अरब का यह रिवाज था कि शहर के बड़े लोग अपने बच्चों को दूध पिलवाने और पलने-बढ़ने के लिए देहात में भेज देते थे, ताकि वहाँ की खुली हवा में रहकर ख़ूब तन्दुरुस्त हो जाएँ। उस ज़माने में अरब के देहात की ज़ुबान शहरों से ज़्यादा साफ़ और ज़ोरदार होती थी। देहात में रहकर बच्चों की ज़ुबान ख़ूब अच्छी हो जाती थी। प्यारे नबी (सल्ल॰) को भी इस रिवाज के मुताबिक़ हलीमा नाम की एक दाई को सौंप दिया गया। दाई हलीमा 'साद' क़बीले की थीं। इसलिए उनको 'हलीमा सादिया' कहते हैं। शुरू-शुरू में प्यारे नबी (सल्ल॰) की अम्मी जान और कुछ दूसरी औरतों ने आप (सल्ल॰) को अपना दूध पिलाया, मगर सबसे ज़्यादा दिनों तक दाई हलीमा ने आप (सल्ल॰) को अपना दूध पिलाया।

आप (सल्ल॰) हलीमा सादिया के पास लगभग चार साल रहे। आप (सल्ल॰) हलीमा और उनके बच्चों को बहुत चाहते थे। नबी हुए तो हलीमा, उनके शौहर और बच्चे सब मुसलमान हो गए।

अम्मी जान का साया सिर से उठ गया

प्यारे नबी (सल्ल॰) चार साल की उम्र से अम्मी जान के पास रहने लगे। सन् 575,76 ई॰ में जब आप (सल्ल॰) छह साल के थे, वे आप (सल्ल॰) को साथ लेकर मदीना गईं। वहाँ से वापसी में बीमार पड़ीं और रास्ते में उनका इन्तिक़ाल हो गया। मक्का और मदीना के रास्ते में 'अब्वा' नामक एक जगह है, वहीं दफ़न हुईं। अब्बू मियाँ आप (सल्ल॰) की पैदाइश से पहले ही इन्तिक़ाल कर चुके थे। अब अम्मी जान भी चल बसीं। आप (सल्ल॰) यतीम हो गए।

उम्मे-ऐमन ने आप (सल्ल॰) को खिलाया था। वहाँ से आप (सल्ल॰) को दादा मियाँ के पास लाईं। उनको बहुत दुख हुआ, मगर क्या करते? मरना-जीना अल्लाह के इख़्तियार में है। मरना तो सबको है। आई हुई घड़ी को कौन टाल सकता है!!

बड़े होने पर प्यारे नबी (सल्ल॰) एक बार 'अब्वा' से गुज़रे। अम्मी जान की क़ब्र देखकर आप (सल्ल॰) का दिल भर आया। आप (सल्ल॰) की आँखों में आँसू देखकर आप (सल्ल॰) के साथी भी रोने लगे।

दादा मियाँ के साथ

दादा मियाँ आप (सल्ल॰) को बहुत प्यार करते थे। काबा के साए में उनके लिए फ़र्श बिछाया जाता। उसपर अकेले वही बैठते, किसी दूसरे को इजाज़त न थी। प्यारे नबी (सल्ल॰) छोटे-से थे, आकर उसपर बैठ जाते। लोग चाहते कि गोद में उठाकर अलग बिठा दें। दादा मियाँ रोक देते। कहते, बैठने दो। फिर सिर और पीठ पर हाथ फेरते और पास ही बिठा लेते।

चचा अबू-तालिब की निगरानी में

आठ साल के थे कि दादा जान भी चल बसे। यह मक्का ही में सन् 578 ई॰ की बात है। मरते वक़्त दादा मियाँ ने आप (सल्ल॰) को चचा अबू-तालिब को सौंपा। वे एक माँ से तीन भाई थे—अबू-तालिब, ज़ुबैर और प्यारे नबी (सल्ल॰) के अब्बा मियाँ अब्दुल्लाह।

चचा अबू-तालिब बहुत तंगहाल थे। उनके अपने भी बहुत-से बच्चे थे। फिर भी वे अपने अच्छे भतीजे प्यारे नबी (सल्ल॰) को बहुत प्यार करते थे। अपने पास सुलाते। जहाँ जाते अपने साथ रखते थे।

नबी (सल्ल॰) ने बचपन में बकरियाँ चराईं। एक बार आप (सल्ल॰) के साथी झरबेरियाँ तोड़ रहे थे। आप (सल्ल॰) ने कहा, "काली-काली तोड़ते जाओ। बड़ी मज़ेदार होती हैं। यह तब का तजरिबा है जब मैं बकरियाँ चराता था।"

साथियों ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने बकरियाँ भी चराई हैं?" बोले, "हाँ, मैंने बहुत थोड़ी मज़दूरी पर मक्कावालों की बकरियाँ चराई हैं।"

बुरे बच्चों की तरह बेकार खेलों में आप (सल्ल॰) अपना वक़्त ख़राब नहीं करते थे। ऐसे किसी जलसे या महफ़िल में जाना आप (सल्ल॰) को गवारा न था, जहाँ बेशर्मी और फूहड़पन की चर्चा हो। आजकल जैसे खेल-तमाशे तो ख़ैर उस ज़माने में न थे, मगर जो थे भी, उनमें कभी आप (सल्ल॰) शरीक नहीं हुए।

बेशक अच्छे बच्चे ऐसे ही होते हैं। आप (सल्ल॰) जैसा बच्चा तो न हुआ है और न कभी होगा। दुनिया के सारे बच्चों के लिए आप (सल्ल॰) का बचपन मिसाल और नमूना है।

नबी होने तक

फ़िजार की लड़ाई

पन्द्रह साल के थे, जब आप (सल्ल॰) ने फ़िजार की लड़ाई में हिस्सा लिया। इस नाम से कई लड़ाइयाँ हुई थीं। आख़िरी लड़ाई में आप (सल्ल॰) भी मौजूद थे। आप (सल्ल॰) अपने चचाओं को तीर उठा-उठाकर देते थे। नबी होने के बाद एक बार उस लड़ाई की बात करते हुए आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं आज भी नहीं सोचता कि मैं उस लड़ाई में शरीक न होता तो अच्छा था।" बात यह है कि उस बार ज़्यादती आप (सल्ल॰) के ख़ानदान की तरफ़ से थी।

हिलफ़ुल-फ़ुज़ूल

फ़िजार की लड़ाई में बड़ी मार-काट हुई। बहुत-से आदमी मारे गए। उसके कुछ दिन बाद कुछ लोग अब्दुल्लाह-बिन-जुदआन नामक एक आदमी के घर में इकट्ठा हुए। खाना-पीना हुआ। फिर सब लोग सिर जोड़कर बैठे और इक़रार किया, "हम सताए जानेवालों की मदद करेंगे। हक़दार को उसका हक़ दिलाएँगे। ग़रीबों का दिल रखेंगे, मुहताजों के काम आएँगे।"

अरब में यह अपनी तरह का पहला अह्द था। जहाँ लूट-मार दिन-रात का खेल हो, जहाँ अपनी नाक ऊँची रखने के लिए, झूठी बड़ाई के लिए सैकड़ों साल तक लड़ाइयाँ ठनी रहती हों, जहाँ कमज़ोरों को सताकर लोगों के दिल में नर्मी की एक लहर भी न उठती हो, वहाँ नेकी और भलाई का ऐसा पाक और अच्छा अह्द! आप (सल्ल॰) बाद में भी अकसर फ़रमाया करते, "अब्दुल्लाह-बिन-जुदआन के घर पर जो 'अह्द' हुआ था, वैसा अह्द कोई आज भी करे तो मैं उसके साथ हूँ। उस अह्द के बदले अगर कोई मुझे लाल (क़ीमती) ऊँट भी देता तो मैं ठुकरा देता।" इस अह्द को तारीख़ में 'हिलफ़ुल-फ़ुज़ूल' कहते हैं।

शाम (सीरिया) का सफ़र

बीबी ख़दीजा एक दौलतमन्द औरत थीं। लोग उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। उनका बड़ा कारोबार था। अपने रुपए से लोगों को तिजारती सफ़र पर भेजतीं। नफ़े में उनको भी शरीक कर लेतीं। प्यारे नबी (सल्ल॰) की सच्चाई की मक्का में बड़ी चर्चा थी। लोग आप (सल्ल॰) को 'अमीन' कहकर पुकारते थे। आप (सल्ल॰) की सच्चाई और ईमानदारी की चर्चा सुनी तो बीबी ख़दीजा ने चाहा कि आप (सल्ल॰) उनका तिजारती माल लेकर सफ़र करें।

पचीस साल के थे जब आप (सल्ल॰) बीबी ख़दीजा के ग़ुलाम 'मैसरा' के साथ सन् 595 ई॰ में शाम (सीरिया) के सफ़र पर रवाना हुए। आप (सल्ल॰) ने ऐसी मेहनत, सूझ-बूझ और ईमानदारी से काम किया कि पहले से कहीं ज़्यादा मुनाफ़ा हुआ। बीबी ख़दीजा पर इसका बड़ा असर पड़ा। वे बहुत ख़ुश हुईं। जितना तय हुआ था उससे ज़्यादा आप (सल्ल॰) को नफ़ा दिया।

शादी

शाम (सीरिया) के सफ़र से लौटे। मैसरा ने आप (सल्ल॰) की ईमानदारी, कारोबार में होशियारी, सच्चाई, हर एक के साथ हमदर्दी, मुहब्बत और इनसानियत का आँखों देखा हाल बयान किया। बीबी ख़दीजा ने निकाह का पैग़ाम भेजा। आप (सल्ल॰) राज़ी हो गए। दिन और वक़्त तय हुआ। आप (सल्ल॰) बीबी ख़दीजा के घर पर पहुँचे। चचा भी साथ थे। सादगी और सलीक़े से निकाह हुआ। क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदार मौजूद थे। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) भी शरीक थे।

शादी के वक़्त नबी (सल्ल॰) की उम्र पचीस साल थी। और बीबी ख़दीजा (रज़ि॰) की चालीस साल। उनकी दो शादियाँ पहले भी हो चुकी थीं। दोनों शौहर मर चुके थे।

प्यारे नबी (सल्ल॰) के मदीना हिजरत (तशरीफ़ ले जाने) से 28 साल पहले बीबी ख़दीजा का निकाह आप (सल्ल॰) के साथ हुआ। नबी होने के बाद 25 साल तक इस नेक बीवी ने वे सारी तकलीफ़ें और मुसीबतें आप

(सल्ल॰) के साथ झेलीं जो दीन के फैलाने में पेश आईं। एक हिम्मतवाली सच्ची मुसलमान औरत और वफ़ादार बीवी की तरह हर मुसीबत में आप (सल्ल॰) का साथ दिया। हर दुख-दर्द में बराबर की हिस्सेदार रहीं।

नबी होने से पहले

आप (सल्ल॰) की अच्छी आदतों की मक्का में चर्चा थी। आप (सल्ल॰) हमेशा सच बोलते थे। लोग अपनी अमानत आप (सल्ल॰) के पास रख जाते। आप (सल्ल॰) उनकी अमानत ज्यों-की-त्यों लौटाते। आप (सल्ल॰) ने कभी शराब न पी। बुतों की पूजा न की। मेलों-ठेलों और त्योहारों में न गए। बुरी बातों के पास न फटके। अब्बू मियाँ ने थोड़ी पूँजी छोड़ी थी। बकरियाँ चराईं, तिजारत की। अपनी रोज़ी मेहनत-मशक़्क़त से कमाई। ख़ुदा का शुक्र अदा किया।

हिरा की गुफा में इबादत

मक्का के क़रीब 'हिरा' नामक एक पहाड़ी है। आप (सल्ल॰) घर से सत्तू-पानी लेते। उसी पहाड़ी की एक गुफा में चले जाते। कई-कई दिन वहाँ रहते। अल्लाह की इबादत करते फिर घर आते, सत्तू-पानी लेते और लौट जाते।

नबी होते हैं

एक दिन उसी गुफा में थे कि अल्लाह ने अपना फ़रिश्ता भेजा। उस फ़रिश्ते का नाम जिबरील (अलैहि॰) है। फ़रिश्ते अल्लाह के पैदा किए हुए हैं। उसका हुक्म बजा लाते हैं। उसका हुक्म नबियों तक पहुँचाते हैं। जिबरील (अलैहि॰) अल्लाह का पैग़ाम लाए। यह पैग़ाम क्या था? अल्लाह का कलाम। वही हमारा क़ुरआन पाक, जिसकी बताई हुई राह पर हम लोग चलते हैं।

रमज़ान की 17 तारीख़ थी। अंग्रेज़ी हिसाब से 6 अगस्त सन् 610 ई॰। आप (सल्ल॰) की उम्र उस वक़्त 40 साल रही होगी। पहले वह सूरा उतरी, जिसका पहला लफ़्ज़ 'इक़रअ' है। उस सूरा का नाम 'अलक़' है।

क़ुरआन पाक से दुनिया ने रौशनी पाई। सीधा रास्ता देखा। अच्छाई, बुराई को पहचाना। दुनिया के सुधार का सामान हुआ। इनसानों को ज़िन्दगी बसर करने का पूरा क़ानून मिला। आप (सल्ल॰) नबी हो गए। भटके हुए लोगों को राह दिखलाने लगे। अन्धेरे में उजाला कर दिया। यह उजाला घरवालों के लिए भी था, बाहरवालों के लिए भी। अपने ख़ानदान और अपने ही देश नहीं, बल्कि सारी दुनिया के लिए, सब इनसानों के लिए था।

★★

नबी होने के बाद

दीन की ख़ामोश दावत

नबी (सल्ल॰) तीन साल तक लोगों को ख़ामोशी के साथ इस्लाम की दावत देते रहे। घरवालों को समझाया। जिनसे कुछ लगाव था, उन तक अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाया। जिनको देखा नेकी-भलाई की खोज में हैं, उनको मंज़िल का निशान बतलाया। थोड़े-से लोग मुसलमान हुए। पहाड़ की किसी घाटी में जमा होते, नमाज़ पढ़ते, अल्लाह की इबादत करते और दीन की चर्चा करते। एक बार मुशरिकों ने देख लिया, बहुत सताया, बुरा-भला कहा। कुछ दिनों के बाद 'अरक़म' के घर जमा होने लगे, वहीं नमाज़ पढ़ते। दीन की बातें करते। यह घर सफ़ा पहाड़ की तली में था।

आप (सल्ल॰) लोगों को समझाते। अलग-अलग एक-एक से मिलते। कहते, "इबादत के लायक़ सिर्फ़ अल्लाह है। दिल से उसको मानो, ज़ुबान से उसके मालिक होने का इक़रार करो।" मुशरिक हर घड़ी इसी फेर में रहते कि मुसलमानों को कैसे सताएँ। बहुत दुख देते, फिर भी जी न भरता। दीन धीरे-धीरे फैलता रहा। काम आगे बढ़ता गया। मुसलमानों की तादाद चालीस हो गई। चालीसवें हज़रत उमर (रज़ि॰) थे।

इस्लाम में दाख़िल होनेवाले पहले लोग

अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाना आसान न था। इस्लाम में दाखिल होना भी मक्कावालों से दुश्मनी मोल लेना था। मक्का बुत पूजनेवालों का गढ़ था। काबा के मुजाविरों और बुतों की देखभाल करनेवालों का मरकज़ (केन्द्र) था। सारा अरब उनकी इज़्ज़त करता था। उनको बड़ा मानता था। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने उन लोगों से बातचीत की, जिनमें दीन का जज़्बा पाया, जिन्हें देखा कि हक़ की तलाश में हैं, आप (सल्ल॰) को सच्चा जानते हैं, आप (सल्ल॰) को अच्छी तरह समझे हुए हैं, ऐसे कुछ लोग इस्लाम में दाखिल हुए।

औरतों में सबसे पहले बीबी ख़दीजा, मर्दों में हज़रत अबू-बक्र, बच्चों में हज़रत अली और ग़ुलामों में हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ईमान लाए।

हक़ की पुकार सफ़ा पहाड़ पर

अल्लाह का दीन अब तक प्यारे नबी (सल्ल०) एक-एक आदमी के पास अलग-अलग पहुँचाते थे। अल्लाह का हुक्म हुआ कि अब इस्लाम की दावत लोगों तक खुल्लम-खुल्ला पहुँचाइए। अपने ख़ानदानवालों की इस्लाह कीजिए। उनको आनेवाले दिन से डराइए।

एक दिन आप (सल्ल०) सफ़ा पहाड़ पर चढ़ गए। वहाँ से पुकारा, "या सबाहु!" (मक्का में यह जुम्ला उस वक़्त बोला जाता है जब लोगों को इकट्ठा करना होता है) लोग दौड़ पड़े। पूछा, क्या है? आपने हमें बुलाया? आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम लोग मुझे सच्चा समझते हो या झूठा।" सबने एक ज़ुबान में जवाब दिया, आप सच्चे हैं, अमानतदार हैं। हम आप (सल्ल०) को सादिक़ और अमीन कहते हैं। आप (सल्ल०) ने कहा, "देखो, मैं ऊँचाई पर हूँ। दूसरी तरफ़ भी देखता हूँ। तुम पहाड़ की तली में हो, तुमको दूसरी तरफ़ की ख़बर नहीं! अगर मैं तुमसे कहूँ कि एक बड़ी फ़ौज 'सफ़ा' पहाड़ के पीछे तुम्हारी घात में है तो तुम मेरी इस बात का यक़ीन करोगे?" सब एक साथ बोले, हाँ क्यों नहीं, ज़रूर, ज़रूर! तुम सच्चे हो! तुमने कभी झूठ नहीं बोला!

आप (सल्ल०) ने कहा, "तो फिर मैं ही तुमको यह ख़बर देता हूँ कि आनेवाले सख़्त अज़ाब से डरो। मरने के बाद पूछ-गछ होगी। मैं तुम्हें दुनिया में कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा सकता। मरने के बाद कोई हिस्सा नहीं दिला सकता। मरने के बाद और इस ज़िन्दगी में छुटकारे की एक ही राह है। कहो, अल्लाह एक है। उसका कोई शरीक नहीं। मुहम्मद उसका बन्दा और रसूल है।"

यह पुकार थी या बिजली की कड़क, जिससे अरब की ज़मीन हिल गई—

वह बिजली का कड़का था या सौते-हादी[1]।
अरब की ज़मीं जिसने सारी हिला दी ।।

नई इक लगन, दिल में सबके लगा दी।
इक आवाज़ में सोती बस्ती जगा दी ।।

पड़ा हर तरफ़ ग़ुल यह पैग़ामे-हक़ से।
कि गूंज उठे दश्तो-जबल[2] नामे-हक़ से ।।

अबू-लहब जो आप (सल्ल॰) का चचा था, बहुत बिगड़ा। बोला, "तुमने इसी लिए हमको बुलाया था।" फिर वह अपने लोगों को लेकर वहाँ से चला गया। आप (सल्ल॰) बाज़ार में लोगों को हक़ की दावत देते तो वह बदबख़्त पीछे-पीछे चलता। आप (सल्ल॰) को परेशान करता। लोगों को बहकाता कि आप (सल्ल॰) की बातें न सुनें।

नबी (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ प्रोपेगंडा

मुग़ीरा का बेटा वलीद क़ुरैश का एक सरदार था। एक दिन लोग उसको घेरे बैठे थे। उसने कहा, "भाइयो! हज के दिन आ रहे हैं। अरब के हर हिस्से से लोग यहाँ आएँगे। मुहम्मद को तुम जानते ही हो, यह उनमें जाएगा और अपना दीन फैलाएगा। कोई एक बात तय कर लो। उसको झुठलाने के लिए सब मिलकर वही एक बात कहो। ऐसा न हो कि कोई कुछ कहे, कोई कुछ। और उसको झूठा साबित करने के बदले तुम ख़ुद झूठे बन जाओ।" लोगों ने कहा कि वलीद! तुम ही बताओ। उसने कहा, "नहीं यह नहीं, पहले तुम लोग कोई बात बताओ। मैं सुनने के बाद कुछ राय दूँगा।"

एक ने कहा, "हम कहेंगे कि यह 'काहिन' है, जैसे पेशेवर लोग होते हैं, लोगों की क़िस्मत अनाप-शनाप बतलाते हैं। पैसे लेते हैं।" वलीद ने कहा, "यह बात जमेगी नहीं। मैंने काहिनों को देखा है। वे मिनमिनाते हैं। उनके जुमले पहलूदार और टुकड़े-टुकड़े होते हैं। इसकी बात का वह ढँग नहीं।"

1. सौते-हादी : हिदायत देनेवाले का पैग़ाम
2. दश्तो-जबल : जंगल और पहाड़

दूसरा बोला, "हम कहेंगे, इसका दिमाग़ ख़राब है। (तौबा! तौबा!) पागल है। इसकी बात पर ध्यान न दो।" वलीद ने कहा, "उनके कलाम को दीवानों की बड़ साबित करना मुश्किल है। यह बात भी झूठी पड़ जाएगी।" तीसरे ने कहा, "अच्छा तो फिर हम कहेंगे कि यह शायर है। शायरों का क्या ठिकाना।" वलीद ने इस राय की भी मुख़ालफ़त की। चौथा बोला, "अच्छा तो हम कहेंगे कि यह जादूगर है। इसकी बात में न आओ।" वलीद ने कहा, "यह भी ग़लत, वह झाड़-फूँक, गण्डा-तावीज़ कब करता है।" अब उकताकर एक साथ बोले, "तो फिर आप ही बताइये। हमारी तो अक्ल काम नहीं करती।" वलीद ने कहा, "ख़ुदा की क़सम! उसके कलाम में अनोखी मिठास है। उसका कलाम ऐसे भारी भरकम पेड़ की तरह है, जिसकी जड़ें ज़मीन में दूर-दूर तक फैली हों। और जिसकी शाखाएँ साएदार हों। उसके आगे तुम्हारी एक न चलेगी। मेरी समझ में तो आता है कि तुम लोग कहो कि यह जादूगर है। अपनी बातों से मियाँ-बीवी में फूट डालता है। बाप-बेटे में बैर पैदा कर देता है। नातेदारों को एक-दूसरे से जुदा कर देता है।" यह तय हो गया। हज के मौक़े पर ये लोग हर एक से यही कहते फिरते, मगर हक़ की राह कौन रोक सका है। नतीजा उल्टा हो रहा था।

सुधारने आए, सुधर गए

नबी (सल्ल॰) के एक दोस्त थे ज़िमाद-बिन-सअ्लबा। नबी होने से पहले आप (सल्ल॰) की उनसे बड़ी दोस्ती थी। उनसे लोगों ने कहा, तुम्हारे दोस्त को दिमाग़ी मरज़ हो गया है। उनकी फ़िक्र करो। वे कुछ झाड़-फूँक करते थे। आप (सल्ल॰) के पास आए और बोले, "तुम्हें क्या हो गया है? कहो तो कुछ फूँक दूँ।" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया—

> "सारी तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है। हम उसी की बड़ाई बयान करते हैं और उसी से मदद माँगते हैं। जिसको अल्लाह सीधा रास्ता दिखा दे, उसे कोई गुमराह नहीं कर सकता और वह जिसे गुमराह कर दे, उसे कोई सीधा रास्ता नहीं दिखा सकता। मैं इस बात की गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद

(पूज्य-प्रभु) नहीं और मैं इस बात की भी गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह का बन्दा और उसका रसूल है।"

इसके बाद आगे कुछ कहने ही वाले थे कि ज़िमाद ने कहा, "फिर से पढ़िए।" आप (सल्ल॰) ने तीन बार यही बोल दोहराए। वे सुनते रहे, फिर बोले, "मैंने काहिनों, जादूगरों और शायरों की बातें सुनी हैं। आपके इस तरह के बोल किसी से नहीं सुने। ये तो समुद्र की गहराइयों तक पहुँच गए। हाथ बढ़ाओ, मैं मुसलमान होता हूँ।" आप (सल्ल॰) ने हाथ बढ़ा दिया। ज़िमाद-बिन-सअ्लबा ने इस्लाम क़बूल कर लिया।

कैसे नासमझ थे, हक़ का मोल-तोल करने आए

अल्लाह का दीन धीरे-धीरे फैल रहा था। मुशरिक परेशान थे। क्या करें, कैसे हक़ की राह रोकें? प्यारे रसूल (सल्ल॰) अकेले हैं। थोड़े से साथी हैं। उनके पास कोई दुनियावी ताक़त नहीं है। देखने में बेबस हैं, मजबूर हैं। फिर भी उनकी बात है कि दिल में उतर जाती है। सब अपने हैं लेकिन फिर भी हमारी कोई नहीं सुनता। बाप-दादा का दीन मिट रहा है। 'लात' और 'उज़्ज़ा' की ख़ुदाई ख़तरे में है। चलो अबू-तालिब के पास चलें। दीन तो उनका भी वही है जो हमारा है। इन बुतों की इज़्ज़त का, ख़ानदान की आन-बान का कुछ-न-कुछ तो ख़याल उनको भी होगा। कुछ लोग इकट्ठा हुए। साथ मिलकर अबू-तालिब के पास आए। बोले, "भतीजे को रोकिए। सारे ख़ानदान की इज़्ज़त मिट्टी में मिल रही है। हमारे-आपके देवी-देवता झुठलाए जा रहे हैं। आपके भतीजे का कहना है कि हम सब बेवक़ूफ़ हैं, नादान हैं। 'लात' और 'उज़्ज़ा' की पूजा करते हैं। इबादत के लायक़ सिर्फ़ अल्लाह है। उसका कोई शरीक नहीं। हम आपसे 'लात' और 'मनात' का वास्ता देकर कहते हैं, उसको समझाइए। अब पानी सिर से ऊँचा हो चुका है।" अबू-तालिब ने किसी तरह उनसे पीछा छुड़ाया, भतीजे से कुछ न कहा। प्यारे रसूल (सल्ल॰) अपना काम करते रहे, दीन फैलता रहा।

दुश्मन फिर आए। बहुत कहा-सुना। इस बार धमकी भी दी, जान का ख़ौफ़ दिला गए। अबू-तालिब सोच में पड़ गए। अब क्या करें, भतीजे को

बुलाया, पास बिठाया। फिर बोले, "बेटा! मुझपर इतना बोझ न डालो जिसे सहना मुश्किल हो जाए।"

प्यारे नबी (सल्ल०) समझे कि चचा साथ छोड़ रहे हैं। यह काम तो अल्लाह का था। उसी के भरोसे यह हो रहा था। बोले, "चचा जान! ये लोग मेरे एक हाथ में सूरज और दूसरे में चाँद लाकर भी रख दें तब भी मैं इस काम को नहीं छोड़ूँगा। या तो अल्लाह अपने दीन को ग़ालिब करेगा या मैं इस राह में मर-खप जाऊँगा।" आप (सल्ल०) यह कह रहे थे और आँखों से आँसू बह रहे थे। फिर उठे और बाहर जाने लगे। चचा ने रोका, वापिस बुलाया और कहा, "भतीजे! जाओ, अपना काम जारी रखो। अबू-तालिब तुम्हें उन ज़ालिमों के चंगुल में नहीं देगा।" बड़ी परेशानी में थे। पालने-पोसने की लाज, इनसानियत का तक़ाज़ा और प्यारे नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी का हर पहलू उनके सामने था, जो जादू की तरह उनके दिल और दिमाग़ पर छा गया था।

..... वे लोग फिर आए। अबकी बार अपने साथ वलीद के बेटे 'उमारा' को भी लेते आए और अबू-तालिब से कहा, "देखिए! यह 'उमारा' है, वलीद का बेटा, ख़ूबसूरत नौजवान। आप इसको अपना बेटा बना लीजिए और अपने भतीजे को हमारे हवाले कर दीजिए। वह हमारे और आपके दीन को झुठलाता है। बाप-दादा जिस रास्ते पर चलते रहे हैं, उससे क़ुरैश ही नहीं सारे अरब, सारी दुनिया, सब इनसानों को फेरने की धुन में है। बेटे के बदले बेटा लो। झगड़ा ख़त्म करो।" अबू-तालिब का मुँह लाल हो गया। ग़ुस्से में बोले, "उमारा को ले लूँ, खिला-पिलाकर मोटा करूँ और अपना प्यारा बेटा तुमको दे दूँ ताकि तुम उसको क़त्ल कर डालो। जाओ, जो तुमसे बन पड़े करो, मैं इन चालों में आनेवाला नहीं।"

अब क्या था, मुशरिकों के ग़ुस्से का पारा चढ़ गया और ज़ुल्म व सितम की चक्की चल पड़ी। हर क़बीला इस बात पर तुल गया कि उसमें जो लोग मुसलमान हुए हैं, उनको पीसकर रख दिया जाए। सिर्फ़ बनू-हाशिम ने अपने सरदार अबू-तालिब का साथ दिया।

हक़ की राह में दुख झेलनेवाले

हज़रत बिलाल (रज़ि॰)

इनको कौन नहीं जानता! प्यारे नबी (सल्ल॰) के 'मुअज़्ज़िन'। रहती दुनिया तक अज़ान की सदा (पुकार) गूँजेगी, रहती दुनिया तक उनका नाम रहेगा।

ये थे आज़माइश की भट्टी में तपकर खरा सोना साबित होनेवाले हज़रत बिलाल (रज़ि॰)। उनका मालिक दोपहर की चिलचिलाती धूप में उनको अरब की गर्म रेत पर लिटा देता। सीने पर बहुत भारी पत्थर रख देता और कहता, "मुहम्मद की बुराई कर, अल्लाह की इबादत से इनकार कर या फिर समझ कि इस भारी बोझ और तपती हुई रेत पर तेरी जान निकल जाएगी। हम तुझे ज़िन्दा न छोड़ेंगे।" इस तकलीफ़ और बेचैनी की हालत में भी इरादे के पक्के और यक़ीन से भरपूर उस जाँबाज़ बहादुर के मुँह से निकलता, "अहद! अहद! (अल्लाह एक है! अल्लाह एक है!)"

हज़रत अम्मार (रज़ि॰)

अम्मार (रज़ि॰) ही नहीं, इनके माँ-बाप को भी ज़ालिम मैदान में घसीट ले जाते, फिर गर्म रेत पर तरह-तरह से सताते। बड़ी तकलीफ़ पहुँचाते, मगर उनका यक़ीन, उनका ईमान किसी भी तकलीफ़ की परवाह न करता।

एक दिन प्यारे रसूल (सल्ल॰) उधर से गुज़रे। माँ-बाप और बेटे को देखा जो अपने ईमान की क़ीमत अदा कर रहे हैं। दीन की राह में बहादुरी से ज़ुल्म और सितम का सामना कर रहे हैं। अम्मार (रज़ि॰) के बाप का नाम यासिर (रज़ि॰) था। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ऐ यासिर की औलाद! सब्र करो और हर हाल में ख़ुदा का शुक्र अदा करते रहो। तुम्हारा मक़ाम जन्नत है।"

यासिर (रज़ि॰) यह ज़ुल्म व सितम सहते-सहते जन्नत को सिधार गए, उनकी बीवी सुमैया (रज़ि॰) को अबू-जह्ल ने भाला मारकर शहीद कर दिया। माँ-बाप की शहादत भी अम्मार (रज़ि॰) को हक़ के रास्ते से न फेर सकी।

हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि॰)

ख़ब्बाब (रज़ि॰) के कपड़े उतारकर इन्हें अँगारों पर लिटा देते, ऊपर से जलता पत्थर रख देते और उनको दबाए रहते कि उठने न पाएँ। यहाँ तक कि दहकते हुए अँगारे ठंडे पड़ जाते।

मगर दहकते हुए अँगारों की गर्मी उस गर्मी से हार गई जो ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल॰) पर ईमान ने उनके दिल में पैदा कर दी थी। ज़ालिमों की भड़काई हुई आग बुझ गई, लेकिन ईमान की गर्मी बाक़ी रही। उसे कोई न ख़त्म कर सका।

हज़रत सुहैब (रज़ि॰)

सुहैब (रज़ि॰) रूम के रहनेवाले थे। मक्का में आकर बस गए थे। तलवार की तिजारत करते थे। बड़े पैसेवाले थे। मदीना जाने लगे तो मक्का के मुशरिकों ने कहा, "हक़ प्यारा है, अल्लाह और उसके रसूल से मुहब्बत का दम भरते हो। यह दौलत हमारे बीच कमाई है, इसे छोड़ जाओ।" सुहैब (रज़ि॰) मुस्कराए और बोले, "नादानो! यह दौलत, इसकी क्या हक़ीक़त है, क्या यह हक़ का मोल हो सकता है? बड़े नासमझ हो। देनेवाला कौन था, रख लो इसको अपने पास, मैं जाता हूँ। इसकी परवाह किसको है। यह सारी कायनात तो हक़ का मोल हो ही नहीं सकती, यह कुछ ठीकरियाँ क्या चीज़ हैं!!"

हज़रत लबीना (रज़ि॰)

लबीना (रज़ि॰) हज़रत उमर (रज़ि॰) की लौंडी थीं। जब वे मुसलमान न हुए थे, उनको मारते, बहुत मारते, थक जाते तो रुकते और कहते, "तुझपर तरस नहीं खा रहा हूँ, थक गया हूँ।" वे जवाब देतीं, "इस्लाम क़बूल कर लो, नहीं तो अल्लाह तुमको इसी तरह अज़ाब में डालेगा।" हक़ पर निछावर होनेवाली इस बहादुर औरत के सब्र और मज़बूती का भी उस नर्मी के पैदा करने में हाथ रहा होगा, जिसके सबब बाद में हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) के दिल से ईमान की धारा फूट निकली।

प्यारे रसूल (सल्ल॰) भी

ज़ुल्म और सितम साथियों ही पर न थे, प्यारे रसूल (सल्ल॰) भी सताए जाते थे और बुरी तरह सताए जाते थे। कभी गले में फन्दा डाला गया तो अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) ने आकर छुड़ाया। कभी सिर पर जानवर की ओझ लाकर डाल दी गई। प्यारे रसूल (सल्ल॰) का सिर सजदे में था और ज़ालिम ठट्ठे लगा रहे थे। आख़िर में आप (सल्ल॰) की चहेती बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) को ख़बर मिली। वे दौड़ी हुई आईं और आप (सल्ल॰) के सिर से ओझ हटाकर अलग फेंक दी। हँसनेवालों के लिए रोने का दिन भी आया। पूरे सब्र और शुक्र के साथ प्यारे नबी (सल्ल॰) अपनी जगह पर जमे रहे। काम होता रहा। दीन फैलता गया।

फिर बहकाने आए

बातिल (झूठ) की तरफ़ से सौदेबाज़ी की एक और कोशिश

दीन फैलता रहा। तेज़ी से, हर रुकावट से निबटता, हर पत्थर को राह से हटाता, जिस तरह पहाड़ी नदी चट्टानों को काटती, पत्थरों को बराबर करती, अपनी राह बनाती बहती चली जाती है। मुशरिक बौखलाए हुए थे, उनकी मति मारी हुई थी। जो तदबीर सोचते, उल्टी पड़ती। सताकर हार गए। चालबाज़ियों से कुछ फ़ायदा न हुआ। पहले प्यारे नबी (सल्ल॰) से किसी तरह का ताल्लुक़ रखनेवाले लोग नए दीन में आ रहे थे। लाचार, मुहताज, लौंडी, ग़ुलामों और नर्म दिल आदमियों ने इस पुकार की तरफ़ क़दम बढ़ाया, मगर अब तो 'हमज़ा' जैसे बहादुर साथ छोड़ रहे थे। पत्थर पसीज गए, चट्टानों से चश्मे उबल पड़े।

फिर इकट्ठा हुए और सब मिलकर आप (सल्ल॰) के पास आए। 'उत्बा' नाम का एक मुशरिक आगे-आगे था। आते ही बड़े अच्छे लहजे में, बड़ी नर्मी से, बड़ी चापलूसी के साथ बोला, "मेरी सुनोगे? मैं तुमसे कुछ कहने आया हूँ। मान जाओ तो बड़ा अच्छा है।" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "कहो अबुल-वलीद, मैं सुनने को तैयार हूँ।" उसने कहा, "यह सब जो तुम करते हो, हमारे देवी-देवताओं की बुराई, नया दीन फैलाने के लिए दौड़-धूप, अगर तुम यह सब रुपये-पैसे, सोने-चाँदी के लिए करते हो तो बेकार परेशान होते हो। 'लात' और 'उज़्ज़ा' की बुराई करना छोड़ दो। बाप-दादा के दीन के ख़िलाफ़ कुछ न कहो। हम दौलत का ढेर तुम्हारे क़दमों में लाकर डाल देते हैं। इतनी दौलत कि मक्का में कोई बड़े-से-बड़ा दौलतमंद भी तुम्हारी बराबरी न कर सकेगा।"

"अगर दौलत नहीं चाहते, सरदार बनने की चाहत है, तो इसके लिए भी हम सब राज़ी और तैयार हैं। आज से तुम हमारे सरदार ही नहीं, बल्कि

राजा हो। लेकिन शर्त वही है। अपना काम बन्द कर दो। लोगों से न कहो कि अल्लाह एक है, उसका कोई शरीक नहीं।''

''यह भी नहीं, अगर किसी ख़ूबसूरत चाँद जैसा हुस्न रखनेवाली औरत से शादी करना चाहते हो तो हमको यह भी मंज़ूर है, हम यह भी कर देंगे। लेकिन हमारे देवी-देवताओं को बुरा न कहो।''

आप (सल्ल॰) सुनते रहे। जब वह ख़ामोश हो गया तो आप (सल्ल॰) ने क़ुरआन पाक की सूरा-41 हा-मीम सजदा की आयतें पढ़नी शुरू कीं। उसने अपने दोनों हाथ पीठ के पीछे ज़मीन पर टेक दिए और बहुत ध्यान से सुनता रहा। आप (सल्ल॰) सजदे के मक़ाम पर पहुँचे, सजदा किया, फिर उसकी तरफ़ देखा और बोले, "तुमने सुना? यह तुम्हारी बात का जवाब है।"

उत्बा वहाँ से उठा और साथियों की तरफ़ चला। उसके चेहरे का रंग बदला हुआ था। मुशरिकों ने देखा, आपस में कहने लगे, "वह आ रहा है, लेकिन उसका चेहरा कुछ और कह रहा है।" क़रीब आया तो चारों तरफ़ से लोग चिल्लाए, "कहो, क्या ख़बर लाए।" जवाब मिला, "ख़बर यह है कि आज जो कलाम मैंने सुना है, ऐसा कलाम मैंने कभी नहीं सुना, वह न शायरी है, न जादू, न काहिनों की बड़। मेरी मानो तो इस आदमी को उसके हाल पर छोड़ दो। उसको कामयाबी हुई तो तुम्हारा क्या बिगड़ेगा, आख़िर तुम ही में से एक वह भी है, उसकी इज़्ज़त तुम्हारी इज़्ज़त है, उसकी नाकामी हुई तो तुम्हारा काम बन गया। यही तो तुम चाहते हो। मेरी तो यही राय है। वैसे तुम्हारी मर्ज़ी जो जी में आए करो।"

झूठ के अन्दर फूट पड़ रही थी। पैरों के नीचे से ज़मीन निकल रही थी। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने अपना काम जारी रखा। हक़ की पुकार मक्का की पहाड़ियों में गूँजती रही। कोई उसे दबा न सका। दीन फैलता रहा।

हक़ के लिए वतन भी छोड़ा

हबश की पहली हिजरत

अरब से मिला हुआ हबश का एक देश है। वहाँ के राजा को नजाशी कहते थे। वह बहुत भला आदमी था। किसी पर ज़ुल्म नहीं होने देता। अपने-पराए के साथ अच्छा सुलूक करता। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने अपने साथियों से कहा, "चचा की वजह से और बनू-हाशिम के डर से ये लोग मुझपर हाथ उठाने की हिम्मत नहीं करते, तुम लोगों को बहुत सताते हैं। तुम हबश चले जाओ, इत्मीनान होगा तो फिर चले आना। वहाँ अल्लाह की इबादत कर सकोगे। उसके बताए हुए तरीक़े पर ज़िन्दगी तो बसर होगी।"

सन् 615 ई॰ में आप (सल्ल॰) के नबी होने के पाँच साल बाद रजब का महीना था। ये थोड़े-से लोग छुपते-छुपाते हबश पहुँचे। उनके चले जाने की ख़बर फैली। मक्का के मुशरिकों को बड़ा ताज्जुब हुआ, ये कैसे लोग हैं! दीन के लिए घर-बार छोड़ दिया। इनका दीन कैसा है!! मक्का के मुशरिकों ने समुद्र के किनारे तक पीछा किया। ये लोग जा चुके थे। खिसियाकर लौट आए। हबश में मुसलमानों को हर तरह की आज़ादी थी।

हबश की दूसरी हिजरत

जो लोग हबश गए थे, कुछ दिनों बाद लौट आए। उनको ख़बर मिली कि अब मक्का में अम्न है। हज़रत उमर (रज़ि॰) मुसलमान हो गए हैं। लोग खुल्लम-खुल्ला नमाज़ पढ़ते हैं। कोई रोक-टोक नहीं। यहाँ आए तो पहले से ज़्यादा सताया गया। क्या करते! प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जाओ, फिर हबश चले जाओ। दीन फैलाओ, दीन पर चलो। मक्का अब रहने की जगह नहीं।" फिर चले गए। यह सफ़र बड़ा कठिन था। क़दम-क़दम पर मक्कावालों के ज़ुल्म और सितम का सामना था। उनको नजाशी पर भी बड़ा ग़ुस्सा आया। कुछ लोग पीछे-पीछे गए। नजाशी से मिले। मुसलमानों की

बुराई की। उसने मुसलमानों और मक्का के मुशरिकों को दरबार में बुलाया। हज़रत अली (रज़ि॰) के भाई हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) ने दरबार में तक़रीर की। तक़रीर बड़ी ज़ोरदार और असरवाली थी।

उन्होंने अपनी तक़रीर में बताया कि इस्लाम से पहले अरब की क्या हालत थी। कैसी गन्दगियों और किन बुराइयों में वहाँ के लोग फँसे हुए थे। फिर अल्लाह ने उनके बीच रसूल भेजा। इस पाक नबी ने उनको अल्लाह की राह दिखाई। बुतों की पूजा छुड़ाई। आपस में मेल-मुहब्बत से रहना सिखाया। सच बोलना, दूसरों का माल बेईमानी से न खाना, मज़लूम की मदद करना, ज़ुल्म का पूरी हिम्मत से मुक़ाबला करना, अल्लाह के भेजे हुए दीन पर चलना और ऐसी ही बहुत-सी अच्छी बातें बताईं। हमारी काया पलट गई। हम अंधेरे से उजाले में आ गए। सच्चाई और भलाई को हमने दोपहर के सूरज की तरह देख लिया, जान लिया।

हमारा यही क़ुसूर है, जिसके लिए हमारे मुल्क और शहरवालों ने, ख़ानदान और घरवालों ने हमको सताना शुरू कर दिया। अपने दीन के लिए जिस राह को हमने ठीक समझा, उसपर चलने के लिए घर-बार छोड़ने पर राज़ी हो गए। यहाँ चले आए तो अब ये हमको यहाँ भी पनाह नहीं लेने देते। नजाशी पर इस तक़रीर का बड़ा असर हुआ। वह रोने लगा। उसने मुसलमानों से कहा, "आप मेरे देश में चैन से रहिए। आपको कोई न सताएगा।" मक्का के मुशरिक अपना-सा मुँह लेकर लौट आए।

बायकाट

बनू-हाशिम का बायकाट

मक्का के मुशरिकों को इसपर बड़ा ग़ुस्सा था। कमज़ोर और बेसहारा लोग नजाशी के दरबार में पहुँच गए। नया दीन फैलता जा रहा है। 'हमज़ा' और 'उमर' (रज़ि॰) तक मुसलमान हो गए। मुसलमानों की तादाद बराबर बढ़ रही है। उनके गरोह से निकलकर लोग अल्लाह के दीन में आते जा रहे हैं। बनू-हाशिम में जो लोग मुसलमान हो गए हैं और जो अभी मुसलमान नहीं हुए हैं वे भी खुल्लम-खुल्ला मुहम्मद (सल्ल॰) का साथ दे रहे हैं। उनकी एक नहीं चलती। चचा, बाप-दादा के धर्म पर हैं, फिर भी भतीजे के लिए सब कुछ सहने को तैयार हैं। उनका ग़ुस्सा अपनी आख़िरी हद को पहुँच गया। "बनू-हाशिम का बायकाट कर दिया जाए—पूरा बायकाट—न उनको लड़कियाँ दी जाएँ, न उनकी लड़कियाँ ली जाएँ। उनके साथ लेन-देन, मेल-जोल, उठना-बैठना, खाना-पीना सब एक दम बन्द।" एक अह्दनामा लिखा गया। काबा के दरवाज़े पर लटका दिया गया।

'बनू-हाशिम' एक घाटी में क़ैद थे। उसका नाम 'शिअबे-अबी-तालिब' (अबू-तालिब की घाटी) है। अनाज बन्द, पानी बन्द, ज़रूरत की सारी चीज़ें बन्द, छोटे-छोटे बच्चे भूख से बिलकते, पत्तियाँ और जड़ी-बूटियाँ खाकर दिन काटते। हफ़्ते और महीने इसी हालत में गुज़रते रहे। प्यारे रसूल (सल्ल॰) ने इस हाल में भी अपना काम न छोड़ा। बड़ी आज़माइश थी, जिसमें पूरा ख़ानदान घिरा हुआ था, मगर अपनी जगह पर अटल थे। उनको एक ही धुन थी। घाटी से बाहर आते, दीन फैलाते। लोगों से कहते फिरते कि पत्थर की इन बेबस मूर्तियों के आगे सिर न झुकाओ। इबादत के लायक़ सिर्फ़ अल्लाह है। उसका कोई शरीक नहीं। मैं उसका बन्दा और रसूल हूँ।

दो साल से ज़्यादा इसी हालत में गुज़र गए। इतने दिन औरतों और बच्चों ने, बूढ़ों और जवानों ने वे मुसीबतें उठाईं कि ख़ुदा की पनाह!! मक्का

के मुशरिक समझते थे कि इस बायकाट से 'बनू-हाशिम' की हिम्मत पस्त हो जाएगी। वे प्यारे रसूल (सल्ल०) का साथ छोड़ देंगे। आप (सल्ल०) उनका साथ छूटने के डर से मूर्तियों की बुराई करना छोड़ देंगे। वह पुकार जिससे उनके दिल काँपते थे, मक्का की पहाड़ियों में न गूँजेगी, मगर ऐसा कुछ न हुआ। आप (सल्ल०) ने अपना काम ज़रा भी धीमा न किया। रफ़्तार तेज़ होती गई। काम आगे बढ़ता ही रहा। दीन फैलता ही रहा।

ज़ुल्म और ज़्यादती के ख़िलाफ़ आवाज़

मक्का के मुशरिकों में कुछ लोग ऐसे भी थे जिनका दिल अन्दर से पुकारता था, "यह ज़्यादती ठीक नहीं।" यह बच्चों का बिलकना, बूढ़े मर्दों और औरतों का एक घूँट पानी और एक सूखी खजूर के लिए तरसना और उसपर ठट्ठा लगाना बड़ी संगदिली है। इस ज़ुल्म को ख़त्म होना चाहिए। इस ज़्यादती के ख़िलाफ़ आवाज़ न उठाना बुज़दिली है। वे इकट्ठा हुए। पाँच आदमी थे। रात को उन्होंने तय किया कि कल बातचीत हो। इस ज़ालिमाना मुआहदे के टुकड़े उड़ा दिए जाएँ जो काबा के दरवाज़े पर लटका हुआ है। बायकाट ख़त्म हो।

सवेरा हुआ। काबा में मुशरिक इकट्ठा थे। उनमें से एक ने बातचीत शुरू की, "हम खाते-पीते हैं। हमारी औरतें और बच्चें आराम से सोते हैं और बनू-हाशिम फाक़े कर रहे हैं।" अबू-जह्ल बीच में बोल उठा, "तुम ही 'बनू-हाशिम' की तरफ़दारी करने आए हो।" दूसरे ने कहा, "यह ठीक कहते हैं। यह ज़ुल्म अब नहीं सहा जाएगा।" तीसरे, चौथे और पाँचवें ने भी साथ दिया। इसी गरोह में और भी लोग थे जिनका दिल अन्दर से कहता था कि यह ज़्यादती है, इसे ख़त्म होना चाहिए। प्यारे रसूल (सल्ल०) की सच्चाई, नेकी और अल्लाह की राह में दुख झेलना, बिना किसी डर के अल्लाह की बड़ाई बयान करते रहना और दीन फैलाने से ज़रा भी न हिचकना—आप (सल्ल०) की इन ख़ूबियों का दुश्मनों पर भी बड़ा असर था। अब चारों तरफ़ से लोग पुकारने लगे, "अह्दनामा फाड़ डालो, बायकाट ख़त्म हो।" अल्लाह की क़ुदरत देखिए! काबा के दरवाज़े की तरफ़ लोग बढ़े तो क्या देखते हैं कि

सारा कागज़ दीमक चाट गई। सिर्फ़ अल्लाह का नाम बाक़ी है। जो झूठ था मिट गया, जो सच था बाक़ी रहा।

अबू-तालिब की मौत

दो साल से ज़्यादा समय तक क़ैद रहने के बाद बनू-हाशिम को खुली हुई हवा में साँस लेने की मुहलत मिली। बायकाट ख़त्म हुआ। लेकिन अभी प्यारे नबी (सल्ल॰) को दीन की राह में बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलनी थीं। हिजरत से तीन साल पहले शव्वाल के महीने सन् 620 ई॰ में चचा अबू-तालिब भी इस दुनिया से चल बसे। वे जब तक ज़िन्दा रहे, मक्का के मुशरिकों की हिम्मत न हुई कि आप (सल्ल॰) पर हाथ डालें। उनके मरते ही ज़ालिमों के रास्ते की यह रुकावट भी जाती रही। उन्होंने मरते वक़्त ख़ानदानवालों को बुलाया। उनसे कहा, "तुम लोग जब तक इनका कहा मानोगे, भले रहोगे। तुम्हारी भलाई इसी में है कि इनके बताए हुए रास्ते पर चलो। इनका कहना मानो।" यह इशारा था प्यारे रसूल (सल्ल॰) की तरफ़। मरते वक़्त चचा अबू-तालिब की उम्र 80 साल थी।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल

चचा अबू-तालिब के मरने के कुछ ही दिन बाद बीबी ख़दीजा (रज़ि॰) का भी इन्तिक़ाल हो गया। इन्तिक़ाल के वक़्त उनकी उम्र 65 साल थी। प्यारे रसूल (सल्ल॰) से शादी के बाद वे 24 साल 3 महीने ज़िन्दा रहीं।

बीबी ख़दीजा (रज़ि॰) और चचा अबू-तालिब जब तक ज़िन्दा रहे हर मुश्किल में उन्होंने प्यारे रसूल (सल्ल॰) का साथ दिया, हक़ की हिमायत की, सच्चाई के लिए दुख झेला, ख़ानदानवालों की परवाह न की। दुश्मनों से न डरे। एक अल्लाह का डर उनके दिल में समाया था। दुनिया में किसी से न डरते थे।

बीबी ख़दीजा (रज़ि॰) हर मुश्किल में साथ थीं, प्यारे रसूल (सल्ल॰) को ढारस देतीं। दीन को फैलाने में अपनी समझ के मुताबिक़ आप (सल्ल॰) को राय देतीं। जी-जान से अल्लाह का हुक्म पूरा करने और उसकी मर्ज़ी दूसरों को बताने में आप (सल्ल॰) के साथ थीं।

इन दोनों के दुनिया से जाते ही आप (सल्ल॰) पर मुसीबतों की बारिश शुरू हो गई। नौबत यहाँ तक पहुँची कि आप (सल्ल॰) नमाज़ पढ़ते तो ज़ालिम आप (सल्ल॰) के सिर पर मिट्टी डाल देते या जानवर की ओझ, और इस तरह अपने लिए दोज़ख़ की आग का इन्तिज़ाम करते और नादान ऐसे कि इन हरकतों पर .खुश होते।

ताइफ़ में

अल्लाह का पैग़ाम नबी (सल्ल॰) को पहुँचाना ही था। भटके हुओं को राह पर लाने और इनसानों की ज़िन्दगी सँवारने के लिए आप (सल्ल॰) भेजे गए थे। अब मक्का की एक-एक चीज़ आप (सल्ल॰) की दुश्मन हो रही थी। आप (सल्ल॰) को अपनी जान की परवाह न थी। उसकी हिफ़ाज़त करनेवाला तो अल्लाह था। मुसीबतों और परेशानियों से आप (सल्ल॰) डरनेवाले न थे। आप (सल्ल॰) को इस बात की फ़िक्र थी कि कुछ लोग साथ देनेवाले मिल जाएँ तो मैं अपना काम करूँ। लोगों तक अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाऊँ। बात कहने की आसानी हो। बुरा-भला कहने और परेशान करने से मुशरिकों को कोई रोक सके, तो ये लोग देखें और समझें और सीधा रास्ता इनको दिखाई दे।

मक्का के दक्षिण-पूर्व (जुनूब मशरिक़) में कोई पचास मील की दूरी पर एक शहर है। उसका नाम 'ताइफ़' है। गर्मियों के मौसम में लोग वहाँ सैर को जाया करते थे, जैसे हमारे यहाँ नैनीताल और मसूरी जाते हैं। बड़ी हरी-भरी जगह है। अमीरों की बस्ती थी। प्यारे रसूल (सल्ल॰) ने सोचा, वहाँ जाऊँ, कोई भला आदमी मेरी बात सुन ले और साथ देने पर तैयार हो जाए तो अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाने में आसानी होगी। ताइफ़ को मरकज़ बनाकर काम जारी रखा जाएगा। आप (सल्ल॰) वहाँ गए। उन्होंने आप (सल्ल॰) की बातों पर कान धरने के बजाय आप (सल्ल॰) का मज़ाक़ उड़ाया। बुरे बच्चों और बदतमीज़ लोगों को आप (सल्ल॰) के पीछे लगा दिया। उन पापियों ने आप (सल्ल॰) को बहुत सताया। आप (सल्ल॰) एक दीवार से टेक लगाकर खड़े हो गए। यह दो आदमियों के घर की दीवार थी, जो अस्ल में मक्का के रहनेवाले थे। वे मुशरिक थे। आप (सल्ल॰) की बात न मानते थे। लेकिन

आप (सल्ल॰) की नेकी का सिक्का उनके दिल पर जमा हुआ था। उन्होंने पापियों की उस भीड़ से आप (सल्ल॰) का पीछा छुड़ाया।

फिर मक्का वापस आए

ताइफ़ के लोगों का यह सुलूक देखा तो आप (सल्ल॰) फिर मक्का लौट आए। लेकिन अब वहाँ मुशरिकों की बन आई थी। चचा अबू-तालिब और बीबी ख़दीजा इस दुनिया से जा चुके थे। कौन था जो आप (सल्ल॰) का साथ देता? दुश्मनों के मुक़ाबले में आप (सल्ल॰) को बचाने के लिए सामने आता? लेकिन आप (सल्ल॰) ने हिम्मत न छोड़ी। अल्लाह का पैग़ाम तो हर हालत में पहुँचाना ही था। दो-चार आदमियों के पास आप (सल्ल॰) ने कहला भेजा। अगर आप (सल्ल॰) मक्का आएँ तो वे आप (सल्ल॰) को पनाह दें ताकि आप (सल्ल॰) अपने रब का पैग़ाम लोगों तक पहुँचाएँ। इसके लिए कोई राज़ी न होता था। लेकिन बुरे लोगों में से कुछ ऐसे होते हैं कि नेकी का जज़्बा उनके दिल में राख के ढेर में चिंगारी की तरह दबा रहता है। बुराइयों में घिरे रहे, चिंगारी बुझ गई। अच्छाई की हवा लगी और चिंगारी भड़क उठी!

'मुतइम-बिन-अदी' की पनाह में

नबी (सल्ल॰) का पैग़ाम मुतइम-बिन-अदी के पास पहुँचा। उन्होंने कहा, "मैं पनाह देने को तैयार हूँ," और हथियार से सजकर बाहर आए। घर के दूसरे लोग भी साथ थे। सब हथियारबन्द थे। इन लोगों के साथ प्यारे रसूल (सल्ल॰) मक्का में दाख़िल हुए। अबू-जह्ल बहुत बिगड़ा। बिगड़कर मुतइम से पूछने लगा, "मुसलमान हो गए हो या इनको सिर्फ़ पनाह दी है।" मुतइम ने कहा, "अरबों के रिवाज के मुताबिक़ वे मेरी पनाह में हैं।" ये वही मुतइम-बिन-अदी थे जिन्होंने बायकाट के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई थी।

प्यारे रसूल (सल्ल॰) ने अपना काम जारी रखा। जो मिलता उससे फ़रमाते, "इबादत के लायक़ सिर्फ़ अल्लाह है। उसका कोई शरीक नहीं। ये मूर्तियाँ इस क़ाबिल नहीं कि इनसान का माथा इनके आगे झुके। मैं अल्लाह का बन्दा और उसका रसूल हूँ।"

अनसार मुसलमान होते हैं

हज के दिन आते तो मक्का में बड़ी चहल-पहल और गहमा-गहमी हो जाती। सारे अरब में एक मेला-सा लग जाता था। दूर-दूर से लोग आते। तरह-तरह के खेल-तमाशे, जलसे-जुलूस होते। हर क़बीले का अलग-अलग मजमा होता। लोग एक-दूसरे से मिलते, बातें करते। मुक़ाबले और तफ़रीह का सामान किया जाता। हज के बाद भी मक्का के आसपास की जगहों पर जो क़ाफ़िलों की राह में पड़ते कई मेले लगते थे।

इस मौक़े पर आप (सल्ल०) का काम बढ़ जाता था। आप (सल्ल०) हर गरोह के पास जाते, हर क़बीले के लोगों से मिलते। अपनी बात कहते। सच्ची बात सबके कानों तक पहुँचाते। रसूल थे, अपना फ़र्ज़ पूरा करते। अल्लाह की बड़ाई बयान करते। वैसे भी जो बाहर से आता, मक्का में उसको एक ही नई बात मालूम होती। बनू-हाशिम में एक नौजवान है। वह कहता है, "मैं अल्लाह का बन्दा और उसका रसूल हूँ। अल्लाह एक है। उसका कोई शरीक नहीं। बुतों की पूजा करना छोड़ दो। यह कोई बात नहीं कि बाप-दादा बुरी राह पर चलते रहे हों तो तुम भी उसी राह पर चलते रहो। मरने के बाद पूछ-गछ होगी। जो भलाई करेगा, इनाम पाएगा। जो बुराई करेगा, दोज़ख़ की आग में जलेगा।" अबू-जह्ल और अबू-लहब कहते फिरते, "देखो यारो! तुमसे एक आदमी की मुलाक़ात होगी। वह तुम्हारे पास ज़रूर आएगा। बुतों को बुरा कहता है। बाप-दादा जिस दीन पर चलते आए हैं उसको मिटाना चाहता है। नया दीन फैलाने की धुन में है। शायर या फिर पागल है (तौबा! तौबा!)। तुम उसकी बात पर ध्यान न देना।" इन बातों का उल्टा असर होता। लोगों को फ़िक्र हो जाती कि देखें यह कौन आदमी है? क्या कहता है? सच्चाई का यही हाल होता है। दोस्त तो ख़ैर अपना हक़ अदा ही करते हैं, दुश्मन नुक़सान पहुँचाना चाहते हैं, उल्टा उससे फ़ायदा पहुँचता है। हमेशा से ऐसा ही होता रहा है, हमेशा ऐसा ही होता रहेगा। हक़ का मिज़ाज एक है, एक ही रहेगा।

प्यारे नबी (सल्ल॰) का शहर

'यसरिब' जिसको अब हम मदीना कहते हैं। प्यारे रसूल (सल्ल॰) यसरिब चले गए तो उसको 'मदीनतुन्नबी' (नबी का शहर) कहा जाने लगा। फिर सिर्फ़ 'मदीना' रह गया। अब हम सिर्फ़ मदीना कहते हैं, मगर मतलब वही होता है, मदीनतुन्नबी यानी नबी का शहर। मदीना में उस वक़्त अरबों के दो क़बीले आबाद थे। एक का नाम था 'औस' और दूसरे का 'ख़ज़रज'। इस शहर में यहूदी भी आबाद थे। जैसा अरब के दूसरे क़बीलों का हाल था, ये दोनों क़बीले भी आपस में लड़ा करते थे। अभी कुछ ही दिन हुए थे कि इन दोनों में बड़ी लड़ाई हुई थी और दोनों तरफ़ के बहुत-से आदमी मारे गए थे। इन लोगों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। इन्होंने अल्लाह का दीन फैलाने में जी-जान से मदद की। इसलिए इनको अनसार कहा जाने लगा। हम इनका बयान इसी नाम से करेंगे।

हज के मौक़े पर सारे अरब से लोग आया करते थे। मदीना से भी आते थे, नबी (सल्ल॰) उनके पास भी गए। अल्लाह ने उनको रास्ता दिखलाया। कुछ लोग मुसलमान हो गए। मदीना में यहूदी आबाद थे। उनकी मज़हबी किताबों में एक आनेवाले नबी का ज़िक्र था, यह बात उन लोगों के कान में पड़ चुकी थी। ये लोग घर लौटे तो यहूदियों से आप (सल्ल॰) की बातें बताईं। बहुत-से यहूदी मुसलमान हो गए। इस बार अनसार में से मुसलमान होनेवालों की तादाद 6 थी।

दूसरे साल यानी नुबूवत के बारहवें साल सन् 621 ई॰ में अनसार में से 12 आदमी आए, मुसलमान हुए और अह्द किया, "किसी को अल्लाह का शरीक न बनाएँगे। चोरी और ज़िना नहीं करेंगे। अपनी औलाद के क़त्ल से बचेंगे। किसी पर झूठी तोहमत नहीं लगाएँगे। प्यारे रसूल (सल्ल॰) की किसी भलाई में नाफ़रमानी न करेंगे।"

मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰) का मदीना जाना

नबी (सल्ल॰) ने मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰) को क़ुरआन की तालीम देने के लिए मदीने भेजा। उनको सब लोग वहाँ 'पढ़ानेवाला' कहते थे। वे लोगों

को क़ुरआन पढ़ाते। दीन की बातें सिखाते। अल्लाह के बताए हुए रास्ते पर ख़ुद चलते। लोग उनको देखकर अच्छी बातें सीखते और वैसा ही करते। मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰) की बातें सुनकर साद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) इस्लाम में दाख़िल हुए। उनकी गिनती मदीना के बड़े लोगों में होती थी। उनके इस्लाम में दाख़िल होते ही मदीना के घर-घर में दीन फैल गया। न कोई मर्द बचा, न कोई औरत। जवान, बूढ़े-बच्चे सब इस्लाम में दाख़िल हो गए। दीन फैलाने में असअद-बिन-ज़ुरारा अनसारी (रज़ि॰) ने बड़ा हिस्सा लिया। उनकी कोशिश से हर घर में रौशनी पहुँची, सबने सीधा रास्ता पाया।

अनसार से मुआहदा

दूसरे साल हज के मौक़े पर मुसलमान मदीना से मक्का आए। उनके साथ वे लोग भी थे जिन्होंने अभी इस्लाम क़बूल नहीं किया था। मुसलमानों ने नबी (सल्ल॰) को कहला भेजा कि हम अकेले में आपसे मुलाक़ात करना चाहते हैं। कुछ बातें करनी हैं। इस मुलाक़ात के लिए वह जगह तय हुई जिसको 'अक़बा' कहते थे। ईदुल-अज़हा (बक़रा-ईद) के दूसरे दिन रात के सन्नाटे में, एक तिहाई पहर बीतने के बाद दबे पाँव अनसार का गरोह घाटी में अक़बा के पास इकट्ठा हुआ। मर्द और औरतें सभी थे। प्यारे रसूल (सल्ल॰) की राह देखी जाने लगी। वादे के मुताबिक़ आप (सल्ल॰) तशरीफ़ लाए। आप (सल्ल॰) के चचा अब्दुल-मुत्तलिब के बेटे अब्बास भी आप (सल्ल॰) के साथ थे। वे अभी तक इस्लाम में दाख़िल नहीं हुए थे। फिर भी यह जानने के लिए आए थे कि अनसार से जो बातचीत होती है वह भरोसे के लायक़ है या नहीं? उन्हीं ने सबसे पहले बातचीत शुरू की। बोले, "ऐ ख़ज़रज के लोगो! तुम्हें मालूम है, मुहम्मद (सल्ल॰) हमारे कौन हैं? हम उन लोगों के मुक़ाबले में इनकी मदद के लिए सब कुछ सहते रहे हैं, जो हमारी ही क़ौम के लोग हैं। और दीन के मामले में हमारी-उनकी राय भी एक है। हमने इनके लिए मुसलमान न होने के बावजूद न अपनी क़ौम की परवाह की, न अपने दीन की। हमारे शहर में ये इज़्ज़त की ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। महफ़ूज़ हैं। फिर भी ये अब तुम्हारे शहर जाना चाहते हैं और तुममें शामिल होना चाहते हैं। मेरा कहना यह है कि अगर तुम अपना वादा पूरा करने का

पक्का इरादा रखते हो, दुश्मनों के मुक़ाबले में इनकी मदद करने की हिम्मत तुममें है तो इनको ले जाओ, और अगर यह इरादा हो कि ये जब हमें छोड़कर, अपना शहर और वतन छोड़कर, तुम्हारे यहाँ पहुँचें तो तुम क़ुरैश के दबाव में आकर इन्हें दुश्मनों के हवाले कर दो, तो इससे अच्छा यह है कि तुम अभी से साफ़ जवाब दे दो। ये हमारे बीच हर तरह से अम्न में हैं, इज़्ज़त और आबरू से हैं।"

मदीना के लोगों ने आप (सल्ल॰) की तरफ़ देखा, एक ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हम तो आपके मुँह से सुनना चाहते हैं कि आपको हमसे क्या अह्द लेना मंज़ूर है।" नबी (सल्ल॰) ने अपने क़ायदे के मुताबिक़ क़ुरआन पाक की कुछ आयतें पढ़ीं। अल्लाह की इबादत और उसका हुक्म मानने पर उभारा, फिर बोले, "मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे अपने बाल-बच्चों और घरवालों की तरह समझो, जो उनके लिए करते हो, मेरे लिए करो। जितनी हिफ़ाज़त उनकी ज़रूरी समझते हो, उतनी मेरी भी ज़रूरी समझो।" अनसार ने कहा, "हम इसका वादा करते हैं, आपको मालूम है, हमको लड़ने-मरने में कोई शर्म नहीं। फिर आपके लिए दुश्मनों से लड़ाई करना, 'दीन' की राह में सिर-धड़ की बाज़ी लगाना हमारा फ़र्ज़ है। हम पीछे न रहेंगे।" एक ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! एक बात का हम और इत्मीनान करना चाहते हैं। अब तक यहूदियों से हमारे ताल्लुक़ात थे, आपके लिए हम उनसे कट रहे हैं। कल अल्लाह अपने दीन को ग़ालिब कर दे और आप सोचें कि हमको छोड़कर अपने ख़ानदानवालों से आ मिलें।" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "मैं तुम्हारा हूँ। तुम मेरे हो। जिससे तुम्हारी जंग उससे मेरी जंग, जिससे तुम्हारी सुलह उससे मेरी सुलह।" फिर आप (सल्ल॰) ने उनमें से बारह आदमियों को चुन लिया और उनके ज़िम्मे यह काम सौंपा कि अपने-अपने क़बीले के लोगों को दीन की बातें बताएँ, अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ चलना सिखाएँ। यह मानो हमारे इतिहास में इस्लामी जमाअत के बारह 'क़य्यिम' थे, जिन्होंने अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) के मुताबिक़ काम करना लोगों को सिखाया। सबसे पहले 'क़य्यिम' हज़रत मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰) थे, जिनके ज़िम्मे सबसे पहले ख़ुद प्यारे रसूल (सल्ल॰) ने यह काम

सौंपा था। इनका हाल पहले बताया जा चुका है।

इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने उन लोगों को इजाज़त दे दी कि वे अपनी जगह पर वापस जाएँ और आराम करें।

क़ुरैश को रात की घटना की कुछ सुन-गुन मिल गई थी। उनमें खलबली मच गई। अनसार के डेरे पर पहुँचे, पूछ-गछ की, लड़ाई की धमकी दी। कुछ पता न चला, लौट आए। जब अनसार वहाँ से मदीना चले तो ठीक-ठीक बात का पता चला। अब क्या करते?

इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को खुली इजाज़त दे दी कि मदीना चले जाएँ। अनसार से उनका रिश्ता भाइयों का रिश्ता है। यह रिश्ता दीन का रिश्ता है, और यही असली रिश्ता है। सब मुसलमान भाई-भाई हैं। बहुत-से मुसलमान चले गए। कुछ मजबूर और बेसहारा थे जिनको मक्का के मुशरिकों ने जाने न दिया, वे रह गए।

रात के सन्नाटे में अनसार से जिस मुआहदे का ज़िक्र हमने ऊपर किया, उसकी हमारे इतिहास में बड़ी अहमियत है। प्यारे रसूल (सल्ल॰) ने मक्का के बजाय मदीना में रहने का फ़ैसला किया। दीन के लिए काम का मरकज़ बदल गया। मक्का के मुशरिक मुसलमानों को सताते थे, उनको एक अम्न-सुकून की जगह मिल गई। दीन को फैलाने में इस गरोह ने बड़ी मुश्किलें पैदा कीं। फिर भी सच्ची बात यह है कि काम आगे बढ़ता रहा। अब रौशनी बहुत दूर-दूर पहुँच रही थी।

फूँकों से यह चिराग़ बुझाया न जाएगा

इन सब बातों ने क़ुरैश की नींद हराम कर दी। उन्होंने समझ लिया कि अब मुसलमान मजबूरों और बेसहारों का एक गरोह नहीं, बल्कि अरब में एक आज़ाद ताक़त बनते जा रहे हैं और एक दिन आएगा जब ये हमसे मैदान छीन लेंगे। इसलिए वे 'दारुन्नदवा' में जमा हुए। 'दारुन्नदवा' उनका क्लबघर था। वहीं जमा होते। कोई ख़ास बात होती तो आपस में सलाह करते। इस क्लबघर में जितने बुरे मशूवरे हुए शायद ही दुनिया की किसी भी दूसरी महफ़िल में हुए हों। सोचने लगे कि क्या किया जाए? अब तो ये

मुसलमान दरिया की तरह बढ़ते ही जा रहे हैं। एक दिन था कि इनकी सुननेवाला कोई न था। सफ़ा पहाड़ की चोटी से पहली बार जब इस नए दीन की पुकार हमारे कान में पहुँची थी तो हम समझे थे कि यह आवाज़ पहाड़ियों से टकराकर रह जाएगी और इसकी गूँज पहाड़ों और वादियों में गुम हो जाएगी, मगर आज हम देखते हैं कि यह आवाज़ दिलों में उतरती जा रही है। हमें आज ही इसका फ़ैसला करना है कि इस आवाज़ को कैसे बन्द किया जाए। यह पुकार किस तरह बन्द हो (तौबा! तौबा!), उनके सिर पर एक नई बौखलाहट सवार थी। एक ने कहा, "हम उन्हें क़ैद कर दें। एक आदमी हर वक़्त पहरा देता रहे, फिर ये क्या करेंगे।" एक बूढ़ा बोला, "नादानो! अब तो उनके बहुत-से साथी हो गए हैं। फिर उनके ख़ानदानवाले भी तो हैं। आएँगे, तुम्हारी कोठरी के किवाड़ तोड़ डालेंगे। उनको निकाल ले जाएँगे। तुम मुँह देखते रह जाओगे।" दूसरा बोला, "तो फिर हम उनको देश निकाला दे देंगे। उनका दीन फैले या कुछ भी हो, हमारे यहाँ से तो झंझट ख़त्म होगा!" बूढ़े ने कहा, "तुम लोग बड़े बेवक़ूफ़ हो, तुमको मालूम है कि उनकी बातों में जादू का असर है! उनका दीन जंगल की आग की तरह फैलता जा रहा है। तुम उन्हें देश निकाला दोगे और वे सारे अरब को अपना हम-ख़याल बनाकर फिर इस शहर में दाख़िल होंगे। वह वक़्त हम सबके लिए बहुत बुरा होगा!" अबू-जह्ल की बारी थी। वह ज़ालिम प्यारे नबी (सल्ल॰) को सताने और इस्लाम की दुश्मनी में हमेशा आगे-आगे रहा करता था। उसने कहा, "मैं ऐसा तरीक़ा बताऊँगा जो कभी चूकेगा नहीं। हर क़बीले से एक-एक नौजवान नंगी तलवार हाथ में ले। सब जमा होकर उसपर हमला करें (तौबा! तौबा!)। और उसको क़त्ल कर डालें। फिर उसके ख़ानदानवालों की क्या हिम्मत और ताक़त होगी कि बदला ले सकें, किस-किस से लड़ाई मोल ले सकेंगे?" सबने इस राय से इत्तिफ़ाक़ किया। एक दिन तय हो गया। इस नापाक इरादे के साथ उनकी महफ़िल ख़त्म हुई।

हिजरत

नबी (सल्ल०) को क़ुरैश की इस साज़िश की ख़बर मिली। हिजरत के लिए अल्लाह का हुक्म आ चुका था। आप (सल्ल०) अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के पास गए। उनको बताया कि मक्का छोड़ने की इजाज़त मिल चुकी है। उन्होंने भी साथ चलने की ख़ाहिश ज़ाहिर की। आप (सल्ल०) ने उनको इजाज़त दे दी। यह तय हुआ कि जिस रात क़ुरैश के नौजवान अपने बुरे इरादे पर अमल करना चाहते हैं, उसी रात को सफ़र शुरू किया जाए।

सच्चे दीन के चिराग़ को बुझाने का नापाक इरादा दिल में लिए मक्का के मुशरिक मौक़े की ताक में दुबके खड़े थे। प्यारे रसूल (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) को हुक्म दिया कि वे आप (सल्ल०) के बिस्तर पर आप (सल्ल०) की चादर ओढ़कर सो रहें। सवेरे उठकर लोगों की अमानतें वापस करके मदीना आएँ। मक्का के मुशरिक आप (सल्ल०) के दुश्मन थे, लेकिन आप (सल्ल०) की ईमानदारी पर इतना भरोसा था कि जिन चीज़ों को अपने पास रखने से डरते थे, उनको आप (सल्ल०) के पास इत्मीनान के साथ रख जाते थे, और ज्यों-का-त्यों वापस पाते थे। आप (सल्ल०) को पसन्द न था कि उन लोगों की चीज़ें बरबाद हों या उनको ठीक से वापस न मिलें जो आप (सल्ल०) के ख़ून के प्यासे थे। आप (सल्ल०) ने लोगों को बताया कि अमानतों को इधर-उधर करना बड़ा गुनाह है।

आप (सल्ल०) घर से निकले और सीधे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के पास आए। सफ़र का थोड़ा-सा सामान साथ लिया। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने एक ऊँटनी सफ़र के लिए आप (सल्ल०) को देनी चाही। आप (सल्ल०) ने कहा, "क़ीमत ले लो, मुफ़्त न लूँगा।" वे मजबूर होकर मान गए। वहाँ से चलकर सौर पहाड़ की एक गुफा में पहुँचे। उस गुफा में तीन दिन रहे। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के बेटे अब्दुल्लाह दिनभर मक्का के मुशरिकों की बातें सुनते और शाम को आकर गुफ़ा में दोनों को बता जाते कि आप दोनों की

खोज और गिरफ़्तारी की ये तैयारियाँ हो रही हैं। हुआ यह कि रात-भर मक्का के मुशरिक नौजवान आप (सल्ल॰) के घर का पहरा देते रहे। सवेरे क्या देखते हैं कि प्यारे रसूल (सल्ल॰) के बिस्तर से आप (सल्ल॰) के बजाय हज़रत अली (रज़ि॰) उठ रहे हैं। बहुत खिसियाए। यह क्या? हम सबको बड़ा धोखा हुआ। लोग ढूँढने निकल पड़े। सौ ऊँट इनाम मुक़र्रर हुआ। बड़ी खलबली मच गई। जो सोचा था, कुछ न हो सका। आमिर-बिन-फ़ुहैरा हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के ग़ुलाम थे। दिनभर बकरियाँ चराते। शाम को उन्हें ग़ार के मुँह पर ले आते। दूध दुहकर आप दोनों को देते। बकरियों के आने-जाने से हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) के पैरों के निशान मिट जाते। किसी को पता न चलता कि यहाँ तक बकरियों और चरवाहे के अलावा कोई आया था।

तीन दिन के बाद आप दोनों गुफा से निकले। दो ऊँटनियाँ मौजूद थीं। उनपर सवार हुए। अब्दुल्लाह-बिन-उरैक़ित नामक एक आदमी जो रास्ते से अच्छी तरह वाक़िफ़ था, आगे-आगे था। आमिर-बिन-फ़ुहैरा को हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने अपने पीछे बिठाया। रास्ते में मदद मिलेगी। गुफा में तीन दिन ठहरे रहे। इस मौक़े पर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) की बड़ी लड़की असमा (रज़ि॰) भी आप लोगों के लिए नाश्ता वग़ैरा जुटाने और तैयार करने में बड़ी दिलचस्पी से हिस्सा लेती थीं। अल्लाह की राह में हिजरत के लिए सभी साथी जी-जान से अपने फ़र्ज़ को अदा कर रहे थे।

प्यारे रसूल (सल्ल॰) पहली रबीउल-अव्वल को मक्का से निकले। चलते वक़्त आप (सल्ल॰) ने दुआ की, "ऐ अल्लाह! इन लोगों ने मुझे इस शहर से निकाला जो मुझे सब शहरों से ज़्यादा प्यारा है। तू अब मुझे उस शहर में बसा, जो तुझे तमाम शहरों से ज़्यादा प्यारा हो।"

आप (सल्ल॰) रबीउल-अव्वल को सोमवार के दिन 'ज़ुह्र' के वक़्त मदीना पहुँचे। उस वक़्त आप (सल्ल॰) की उम्र 52 साल थी। अंग्रेज़ी तारीख़ 28 जून सन् 622 ई॰ थी। नबी होने के बाद आप (सल्ल॰) मक्का में 13 साल रहे।

दीन की दावत मक्का से मदीना पहुँची। दावत का मरकज़ बदल गया। लेकिन दीन का मरकज़ काबा ही रहा, और हमेशा रहेगा। मदीना से सच्चे दीन की रौशनी अरब ही नहीं, दुनिया के दूर-दूर के हिस्सों में पहुँची। सैकड़ों क़ौमों और बहुत-से मुल्कों पर इस्लाम का बड़ा असर पड़ा। तुमको इसका हाल आगे मालूम होगा।

वह पुकार जो सफ़ा पहाड़ से उठी थी, जिसको मक्का के मुशरिक समझते थे कि पहाड़ों से टकराकर रह जाएगी, सारी दुनिया में उसकी गूँज सुनाई देने लगी। मदीना पहुँचकर इस्लाम एक ताक़त, एक मुकम्मल तहरीक और अल्लाह का आख़िरी दीन बना।

नबी (सल्ल॰) के मक्का से मदीना जाने की तारीख़ से इस्लामी सन् का हिसाब शुरू हुआ। इसको हिजरी सन् कहते हैं। आज कल (2018 ई॰) सन् 1439 हि॰ है। यानी आप (सल्ल॰) के मक्का से मदीना जाने के बाद इतने साल बीत चुके हैं। इस्लामी महीनों की तरह इस्लामी सन् भी अलग है। वह यही हिजरी सन् है। हमें अपने ख़त वग़ैरा में इस्लामी महीना और यही सन् लिखना चाहिए।

हिजरत और उसके बाद

...और अबू-क़ुबैस पहाड़ की चोटियाँ इस बाहिम्मत नबी को दूर से ताकती रहीं

हम जहाँ पैदा होते हैं, पलते-बढ़ते हैं, उस जगह से क़ुदरती तौर पर हमें बड़ा लगाव होता है। मक्का की वादियाँ, जहाँ नबी (सल्ल॰) ने बचपन में बकरियाँ चराई थीं, दुनिया में अल्लाह का सबसे पहला घर काबा जिसकी दीवारों की मरम्मत के लिए बहुत छोटी उम्र में आप (सल्ल॰) ने अपने बड़े-बूढ़ों के साथ पत्थर ढोए, सफ़ा पहाड़ जिस पर खड़े होकर आप (सल्ल॰) ने पहली बार अपनी क़ौम को सच्चाई और नेकी की तरफ़ बुलाया, वे गलियाँ, जिनमें आप (सल्ल॰) शाम-सवेरे इस धुन में फिरा करते थे कि अपने हम-वतनों को गुमराही के अंधेरों से निकालकर हिदायत की रौशनी में ले आएँ। प्यारे नबी (सल्ल॰) के रहमदिल दादा, प्यारे चचा और वफ़ादार बीवी, सब ही तो इस ज़मीन में दफ़न थे। बचपन, जवानी और नबी होने के बाद, शिअबे-अबी-तालिब में बीते हुए दिन, हक़ के लिए झेली हुई एक-एक आज़माइश, दुख और सुख सब ही याद आया। उस शहर की तरफ़ दिल खिंचा जाता था, जो पूरी ज़मीन पर सब शहरों से ज़्यादा प्यारा था। लेकिन क़दम आगे ही को बढ़ रहे थे। अपना फ़र्ज़ अदा करने की लगन, अल्लाह के दीन को फैलाने की आरज़ू, यह उम्मीद कि मदीना में कुछ साथी मिल गए हैं, जो इस काम को आगे बढ़ाने में मददगार साबित होंगे।

अल्लाह का हुक्म बजा लाने की ख़ाहिश हर चीज़ से बढ़ गई। हर मुहब्बत पर छा गई। अबू-क़ुबैस की चोटियाँ इस बाहिम्मत नबी को दूर से तकती रहीं और वह आगे बढ़ता गया। आप (सल्ल॰) पर अल्लाह की रहमतें और बरकतें हों!!

क़ुबा में

सोमवार, 8 रबीउल-अव्वल (20 सितम्बर सन् 622 ई॰) को आप (सल्ल॰) क़ुबा पहुँचे। पीर (सोमवार) से जुमा तक पाँच दिन आप (सल्ल॰) वहाँ ठहरे। एक मस्जिद की नींव रखी। अल्लाह ने क़ुरआन में इस मस्जिद का ज़िक्र फ़रमाया है और बताया है कि इसकी नींव नेकी और परहेज़गारी के जज़बात पर रखी गई थी। हर मुसलमान के दिल में कम-से-कम एक बार उसमें नमाज़ पढ़ने की ख़ाहिश होनी चाहिए।

वहाँ से आगे बढ़े। रास्ते में एक वादी थी, क़ुबा और मदीना के ठीक बीचो-बीच, यहाँ जुमा की नमाज़ पढ़ी। जुमा की यह पहली नमाज़ थी। इसमें सौ आदमी शरीक हुए। नमाज़ से पहले आप (सल्ल॰) ने ख़ुत्बा दिया। मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने एक सच्ची बात कहने के जुर्म में ज़िन्दगी दूभर कर दी थी, ख़ून के प्यासे थे। कोई और होता तो अपने नए साथियों को यह दुखभरी कहानी ज़रूर सुनाता, मगर प्यारे नबी (सल्ल॰) ने कुछ न कहा। सारी ज़िन्दगी नेकी पर चलने का हुक्म दिया। आख़िरत की जवाबदेही से डराया। अल्लाह का हुक्म मानने, ख़ुद अच्छा बनने और दूसरों को अच्छा बनाने पर उभारा। आप (सल्ल॰) ने अपने ख़ुत्बे में उन परेशानियों का ज़िक्र तक अपने साथियों से नहीं किया जो आप (सल्ल॰) को मक्का में पेश आईं। इसी लिए तो अल्लाह ने आप (सल्ल॰) के बारे में फ़रमाया, "आप ऊँचे अख़्लाक़वाले हैं।"

मदीना में

पाँचवें दिन आगे बढ़े। मदीना के औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे सब ही आप (सल्ल॰) का इन्तिज़ार कर रहे थे। आँखें रास्ते पर लगी हुई थीं। ज़िन्दगी का जो नक़्शा उनके दिमाग़ में था, उनमें रंग भरनेवाला, अल्लाह का सच्चा पैग़म्बर, दुनिया को शान्ति और इत्मीनान की नई डगर पर चलानेवाला अल्लाह का प्यारा रसूल उनके बीच आनेवाला था। वे हर पल आँखें लगाए इन्तिज़ार में थे।

आख़िरकार एक तरफ़ से धूल उड़ती दिखाई दी। ऊँट पर एक सवार

का चेहरा नज़र आता दिखाई दिया, फिर मक्का के मुशरिकों का सताया हुआ, इनसानियत का सच्चा रहनुमा और उसका प्यारा दोस्त अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) अपने ग़ुलाम को अपनी ऊँटनी पर बिठाए हुए चार आदमियों का यह छोटा-सा क़ाफ़िला सामने दिखाई दिया। आप (सल्ल॰) को देखकर ख़ुशी से लोगों के चेहरे चमक उठे। पूरी बस्ती में ख़ुशी की लहर दौड़ गई। आप (सल्ल॰) के आने की ख़ुशी में बच्चे-बच्चियाँ गीत गा रहे थे, जिनमें प्यारे नबी (सल्ल॰) को मुबारकबाद दे रहे थे और उनका इस्तिक़बाल कर रहे थे। अब इस्लाम के पैग़म्बर उस जगह पहुँच गए, जहाँ से उनके पैग़ाम को पूरी दुनिया में फैलना था।

मक्का से आप (सल्ल॰) जुमेरात, पहली रबीउल-अव्वल को चले थे, सोमवार, 12 रबीउल-अव्वल को दिन में मदीना पहुँचे (24 सितम्बर सन् 622 ई॰)। उस समय आप (सल्ल॰) की उम्र लगभग 53 साल थी।

अनसार का हाल नबी (सल्ल॰) के आने से पहले

मदीना का पुराना नाम यसरिब था। यहाँ अरबों के दो क़बीले रहते थे, एक का नाम था 'औस', दूसरे का 'ख़ज़रज'। उनमें हमेशा लड़ाई ठनी रहती थी। बहुत छोटी-छोटी बातों पर ख़ून की नदियाँ बह जाती थीं। अनसार ही नहीं, इस्लाम से पहले सब ही अरबों का यही हाल था। किसी ने अपने बाप-दादा की तारीफ़ कर दी, दूसरा झगड़ पड़ा। किसी का घोड़ा किसी दूसरे के घोड़े से आगे निकल गया, लड़ाई छिड़ गई। किसी की ऊँटनी दूसरे के खेत में चली गई, तलवारें म्यान से बाहर निकल आईं। ये दोनों क़बीले भी बहुत दिनों से लड़ते चले आ रहे थे, कुछ दिनों पहले ही उनमें बहुत बड़ी लड़ाई हो चुकी थी। नस्ल और ख़ानदान की झूठी बड़ाई के लिए कितनी औरतें बेवा हुईं, कितने बच्चे यतीम हुए।

यही लोग मक्का में प्यारे नबी (सल्ल॰) पर ईमान लाए और प्यारे नबी (सल्ल॰) को मदीना आने की दावत दी।

मदीना पहुँचे तो नबी (सल्ल॰) ने उन लोगों को समझाया, "यह क़बीला और यह गरोहबन्दी कुछ नहीं हैं। तुम सब आपस में भाई-भाई हो। सब

मिलकर अल्लाह के दीन की मदद करनेवाले हो। दीन फैलाने में, अपनी और पूरी दुनिया की इस्लाह में मेरा साथ देनेवाले हो। अब सब झगड़े ख़त्म। अब तुम सब मिलकर एक गरोह 'अनसार' यानी मददगार हो।"

इस तरह अल्लाह के दीन ने इनको हमेशा के लिए जोड़ दिया।

पड़ोसियों से सुलह-सफ़ाई

हज़रत मूसा (अलैहि॰) का नाम तुमने सुना ही है। उनपर तौरात उतारी गई थी। तौरात अल्लाह की किताब थी। यहूदियों ने अपनी बदबख़्ती से उसमें अदल-बदल कर दिया था। यहूदी हज़रत मूसा (अलैहि॰) की उम्मत में थे। मदीना में ये भी आबाद थे। हमेशा से महाजनी का पेशा करते थे। उस वक़्त भी उनका वही कारोबार था। अनसार खेती-बाड़ी करते, क़र्ज़, उधार की ज़रूरत होती तो यहूदियों के पास जाते। ये लोग बिना ब्याज के क़र्ज़ न देते। इनके यहाँ इनसानी हमदर्दी नाम को भी न थी। सूद तो फ़साद की जड़ है ही। आए दिन झगड़े होते रहते।

आप (सल्ल॰) ने यहूदियों और आसपास के अरब क़बीलों से एक समझौता किया। शर्तें ये थीं–

1. यहूदी अपने दीन पर रहेंगे, मुसलमान अपने दीन पर।
2. मुआहदे में जो लोग शामिल हैं, उनमें से किसी पर ज़ुल्म होगा तो दूसरे क़बीले के लोग उसकी मदद करेंगे।
3. ज़ुल्म और ज़्यादती में किसी का भी साथ नहीं दिया जाएगा, चाहे वह किसी की तरफ़ से हो।
4. रोज़गार का ज़रिआ मिला-जुला न होगा। यहूदी अपने ढंग से कारोबार करेंगे। मुसलमान अपने उसूल के मुताबिक़ रोज़ी कमाएँगे।
5. इख़्तिलाफ़ी मामलों में आख़िरी फ़ैसला अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) का होगा, उसको सब मानेंगे।
6. मक्का के मुशरिकों और उनके हामियों को पनाह नहीं दी जाएगी। मदीना पर हमला हो तो यहूदी मुसलमानों के साथ जंग करेंगे।

7. मुआहदे में यहूदियों को भी शामिल रखा जाएगा।

आप (सल्ल॰) चाहते थे कि पड़ोसियों के साथ झगड़े-बखेड़े ख़त्म हो जाएँ। मुसलमान अल्लाह के दीन पर चलें। पड़ोसी भी अच्छी बातें सीखें। मदीना पर हमला हो तो बचाव अच्छी तरह हो सके।

भाईचारा

प्यारे नबी (सल्ल॰) की हिजरत से पहले मुसलमान मदीना आने लगे थे। आप (सल्ल॰) के आने के बाद तो उनका ताँता बँध गया। घर-बार छूटता, ज़िन्दगी-भर की गृहस्थी और गाढ़े पसीने की कमाई भी छिन जाती। लेकिन अल्लाह के इन बन्दों को ईमान इतना प्यारा था कि उसके आगे हर चीज़ मामूली नज़र आती। न ख़ानदानवालों और रिश्तेदारों की परवाह थी, न घर-बार और वतन की। अल्लाह के हुक्म पर चलने और उसी के मुताबिक़ पूरी ज़िन्दगी को ढालने का इरादा उन्हें खींचे लिए जा रहा था। यह न दौलत के लिए मदीना जा रहे थे, न इज़्ज़त और शोहरत के लिए। इनको तो बस दीन के फैलाने की धुन लिए जा रही थी।

कुछ मुसलमान ऐसे भी थे जो मुशरिकों के पंजे में फँसे हुए थे। वे हिजरत नहीं कर सकते थे। उनका क़ुसूर सिर्फ़ यह था कि वे उस सच्चाई की गवाही देते थे, जिसपर ज़मीन, आसमान और इस कायनात का एक-एक ज़र्रा गवाह है। हर घड़ी उनके दिल से यह आवाज़ उठती, “ऐ मालिक! हमें इस बस्ती से निकाल, यहाँ के लोग बड़े सख़्त और ज़ालिम हैं।”

मदीना में पाँच महीने रहने के बाद आप (सल्ल॰) ने ‘अनसार’ और ‘मुहाजिरीन’ का भाईचारा करा दिया। आप (सल्ल॰) एक-एक मुहाजिर और अनसारी का हाथ पकड़ते और मिलाते, साथ ही कहते जाते, “तुम दोनों भाई हो। सब मुसलमान भाई-भाई हैं।”

घर-बार छूटने का बोझ दिल पर से हल्का हुआ। हमदर्दी बढ़ी। एक को दूसरे से ताक़त मिली। उस इनसानी बिरादरी की बुनियाद पड़ी जो ख़ानदान, वतन या आपसी फ़ायदे की बुनियाद पर नहीं बल्कि उसूल और अक़ीदे के एक होने पर उभरती और क़ायम होती है।

ख़ानदानवालों ने तो ज़िन्दगी मुश्किल कर दी थी, जान के पीछे पड़ गए। घर से बेघर किया। माल-दौलत ही के भूखे नहीं, ख़ून के प्यासे बन गए और दूसरी तरफ़ इन दोनों भाइयों ने जायदादें बाँट दीं। घर दे दिए। अपने पास खाना कम होता तो ख़ुद न खाते, इन परदेसी भाइयों को खिला देते। फिर इससे बढ़कर बात थी, सच्ची और गहरी मुहब्बत और इनसानी हमदर्दी की। ऐसी क़ुरबानी जिसकी मिसाल दुनिया की किसी जमाअत के इतिहास में नहीं मिलती। यह उस दीन का कारनामा था जो टूटे हुए दिलों को जोड़ने आया था।

इस तरह जिन लोगों में 'भाईचारा' कराया गया उनकी तादाद सौ थी। आधे मुहाजिर और आधे अनसार।

अनसार ने अपने इन दीनी भाइयों को, जिनसे किसी तरह का दुनियावी रिश्ता नहीं था, अपने घर-बार, जायदाद सब में बराबर का शरीक बना लिया।

बद्र की लड़ाई

हिजरत के बाद ही क़ुरैश ने मदीना पर हमले की तैयारी शुरू कर दी थी। इसके लिए ख़र्च का इन्तिज़ाम ज़रूरी था। इसका यह तरीक़ा सोचा गया कि कारोबार के लिए क़ाफ़िला 'शाम' (सीरिया) भेजा जाए। इसमें मक्का के सब लोग पूँजी लगाएँ और जो कुछ फ़ायदा हो सब मुसलमानों से जंग में लगाया जाए। यह क़ाफ़िला, जिसका सरदार अबू-सुफ़ियान था, जब शाम से वापस लौट रहा था तो यह झूठी अफ़वाह मक्का में फैल गई कि मुसलमान क़ाफ़िले को लूटने आ रहे हैं। इसपर क़ुरैश बहुत घबराए, बेहद ग़ुस्सा हुए। बड़ी भारी सेना लेकर निकले। लगभग एक हज़ार की तादाद थी। जो ख़ुद न जा सका उसने अपने बदले का आदमी भेजा। सात सौ पैदल और सवार, ज़िरह-बक्तर से लैस, लोहे में डूबे हुए, सौ घोड़े और सात सौ ऊँट, ऐसा जान पड़ता था कि ज़लज़ला आ गया है।

कुफ़्र का समुद्र ठाठें मारता हुआ आगे बढ़ा

इस्लाम-दुश्मन आंधी और तूफ़ान की तरह आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

दासियाँ और गानेवालियाँ भी साथ थीं। गाने क्या थे? मक्का के मुशरिकों की तारीफ़, घमण्ड और ग़ुरूर की बातें, अल्लाह के दीन और मुसलमानों की बुराई। अभी रास्ते में ही थे कि ख़बर मिली, "क़ाफ़िला बचकर निकल गया। हमला नहीं हुआ, वापस चलो।" लेकिन अबू-जह्ल पक्का ज़ालिम था। वह कब मानता। सिर में सौदा समाया हुआ था। मौत सिर पर नाच रही थी। बोला, "अब हम न लौटेंगे। बद्र के मैदान में डेरे डालकर जश्न मनाएँगे। गाना बजाना होगा, दावतें रहेंगी। पूरे अरब पर हमारी धाक बैठ जाएगी। मुसलमानों की क्या हिम्मत जो हमपर हमला कर सकें। हम तो उनके सिर पर पहुँच गए हैं।"

फिर भी कुछ लोग वापस गए। अबू-जह्ल पर बहुत बिगड़े, आगे न बढ़े।

बचाव के लिए मश्वरे

नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को इकट्ठा किया। आप (सल्ल॰) हर काम सलाह-मश्वरे से करते थे। वैसे तो आख़िरी फ़ैसला अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) ही का है। लोग इकट्ठा हुए। आप (सल्ल॰) ने मुहाजिरों की तरफ़ देखा। उनमें से एक ने कहा, "अल्लाह का हुक्म पूरा करने में देर न कीजिए। हम आपके साथ हैं। हम हज़रत मूसा (अलैहि॰) की उम्मत की तरह जवाब न देंगे। उस .ख़ुदा की क़सम, जिसने आपको नबी बनाकर भेजा! अगर आप दुनिया के दूसरे किनारे तक जंग करते चले जाएँगे तब भी हम आपका साथ नहीं छोड़ेंगे।"

अब आप (सल्ल॰) ने अनसार की तरफ़ मुँह किया। उन्होंने मदीना के अन्दर ही मदद का वादा किया था। यह मामला बस्ती के बाहर का था। साद-बिन-मुआज़ अनसारी (रज़ि॰) उठे। उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपपर दुरूद और सलाम! शायद आपका इशारा हमारी तरफ़ है। हम उन सच्चाइयों पर ईमान रखते हैं, जो आप लाए हैं। आपको सच्चा जानते हैं। यही नहीं, बल्कि इस दीन की सच्चाई पर गवाह भी हैं। आपके हुक्म पर चलना हमारी दीनी ज़िम्मेदारी है। आपका जो इरादा हो, कर गुज़रिए। हम

आपके साथ हैं। आप हमें समुद्र में कूदने का भी हुक्म देंगे तो हमें इनकार न होगा। हमारा एक आदमी भी पीछे न रहेगा। हम दुश्मन का सामना करने से नहीं घबराते। हम जमकर लड़नेवाले हैं। हमारा वादा झूठा नहीं होता। शायद अल्लाह हमारी तरफ़ से वह काम आपको दिखला दे, जिससे आपकी आँखों को ठंडक पहुँचे। अल्लाह की बरकत आपके क़दमों में है। चलने का इरादा कीजिए।"

आप (सल्ल॰) यह सुनकर बहुत ख़ुश हुए। फिर कहा, "अच्छा चलो, अल्लाह ने मुझसे वादा फ़रमाया है, इस्लाम-दुश्मनों की हार को अपने सामने देख रहा हूँ।"

एक तरफ़ नाच-गाना और शराबख़ोरी

बद्र के मैदान में आख़िरी किनारे पर क़ुरैश की सेना आकर ठहरी। उसने पानी पर क़ब्ज़ा जमा लिया। मुसलमान जिस हिस्से में थे, वहाँ यह हाल था कि रेत में पाँव धँसते थे। चलना मुश्किल था। अल्लाह की मेहरबानी से पानी बरस गया। अब क्या था, पानी-ही-पानी हो गया। लोगों ने हौज़ बना लिए। वुज़ू के लिए या पीने के लिए पानी की कमी न रही। ज़मीन सख़्त हो गई। आसानी से इधर-उधर चल सकते थे। मक्का के मुशरिक परेशानी में पड़ गए। चलते तो पाँव फिसलता। शुरुआत अच्छी थी, अंजाम ख़राब हुआ।

रात-भर मक्का के मुशरिकों ने ख़ुशी मनाई, गाने सुने, शराब पी। समझते थे हमारे टिड्डी दल के आगे ये निहत्थे मुसलमान क्या टिकेंगे? ताक़त के नशे में चूर थे। अपने ख़ालिक़ को भूले हुए थे।

दूसरी तरफ़ अल्लाह से दुआएँ

दूसरी तरफ़ ख़ुदा का सच्चा पैग़म्बर, अल्लाह के आगे सजदे में पड़ा था। उसे पुकार रहा था, "ऐ ज़िन्दा और क़ायम रहनेवाले! ऐ ज़िन्दा और क़ायम रहनेवाले!" इसी हाल में सवेरा हो गया। उसने सारी रात अपने मालिक के दरबार में गिड़गिड़ाकर दुआ करते आँखों में काट दी। सवेरा हुआ। साथियों को नमाज़ के लिए इकट्ठा किया, नमाज़ पढ़ी। लोगों को अल्लाह की राह में जान देने की क़द्र-क़ीमत बताई। यह लड़ाई मुल्क और दौलत के लिए

नहीं, ख़ानदान, क़बीले और नामवरी के लिए नहीं, यह लड़ाई हक़ के लिए है। हक़ के लिए जान देना मर्दों का काम है।

हज़रत साद-बिन-मुआज़ अनसारी (रज़ि॰) ने एक ऊँची-सी छायादार जगह बना दी थी। यहाँ से आप (सल्ल॰) पूरे मैदान को देख सकते थे। यहीं से लड़ाई के बीच साथियों को हिदायतें देते रहे। ऐसी ऊँची जगह को अरबी ज़ुबान में 'अरीश' कहते हैं, जहाँ आजकल बद्र की मस्जिद बनी हुई है। उसी के क़रीब वह 'अरीश' भी था।

हक़ और बातिल आमने-सामने

आप (सल्ल॰) ने सफ़ें सीधी कीं। 313 आदमी, 70 ऊँट और दो घोड़े हक़परस्तों के पास थे। इस निहत्थी फ़ौज के मुक़ाबले में दूसरी तरफ़ हथियारों से लदी बड़ी फ़ौज का दरिया मौजें मार रहा था। दुश्मन अपनी फ़ौज और साज़ो-सामान की ज़्यादती पर फूले हुए थे। उन्हें अपनी ताक़त पर घमंड था। वे अपनी नाक ऊँची रखने और अरब क़बीलों पर अपनी बड़ाई का सिक्का बिठाने आए थे और मुसलमान इस लड़ाई में अपने ईमान और यक़ीन की क़ीमत अदा करने के लिए उतरे थे। अल्लाह और उसके रसूल से उन्होंने अह्द किया था। जान देकर उसको पूरा करने के लिए, रेत के एक-एक ज़र्रे पर अपने ख़ून से हक़ की गवाही की निशानी छोड़ जाने के लिए, उनको अपनी ताक़त का घमंड न था। ताक़त थी भी कहाँ? वे तो बहुत थोड़े थे। वे नस्ल और ख़ानदान की बरतरी के लिए लड़ने नहीं आए थे। इन चीज़ों से उनका रिश्ता उसी दिन कट चुका था जब उन्होंने अल्लाह से रिश्ता जोड़ा। उनका ख़ानदान उनका दीन था, उनकी इज़्ज़त अल्लाह के दीन की इज़्ज़त थी। अल्लाह की मदद के भरोसे, उसके रसूल के हुक्म पर सिर-धड़ की बाज़ी लगाने निकले थे। वे किसी और के रोब में आनेवाले न थे। इनसानों का डर उनके दिल से निकल चुका था। वे अल्लाह से डरकर सारी दुनिया से निडर हो गए थे।

उस दिन उमैर-बिन-वह्ब नामी एक शख़्स ने घोड़े पर बैठकर मैदाने-जंग का चक्कर लगाया। फिर अपनी फ़ौज में आकर साथियों से बोला, "यारो तुम्हें ख़बर है! तुम्हारे सामने हलाकत और तबाही खड़ी है। ये मदीनावाले

मरने के जुनून में आए हैं। उन्हें देखो कैसे ख़ामोश हैं। साँप की तरह अंदर-ही-अंदर बल खा रहे हैं। उन्हें न बाल-बच्चों की फ़िक्र है, न घर-बार की। उनकी आँखों से शरारे निकल रहे हैं और यह हाल तब है जबकि वे बिलकुल निहत्थे हैं। बदन पर न ज़िरह है और न सिर पर कोई चीज़।"

उसने ग़लत नहीं कहा। उस दिन अल्लाह के इन जाँनिसार बन्दों को मौत ज़िन्दगी से ज़्यादा मीठी मालूम हो रही थी। जान देकर जन्नत का सौदा करनेवालों के तेवर यही होते हैं।

आप (सल्ल॰) ने सफ़ों को ठीक किया। दूसरी तरफ़ फ़ौज का समुद्र मौजें मारता हुआ आगे बढ़ा। मुशरिकों की फ़ौज और क़रीब आ गई। आप (सल्ल॰) ने उसकी तरफ़ देखकर फ़रमाया, "ऐ अल्लाह! क़ुरैश के ये लोग घमंड में डूबे हुए हैं। ये तेरे दुश्मन हैं। उन्होंने तेरे रसूल को झुठलाया है। ऐ मेरे रब! तूने मुझसे मदद का जो वादा फ़रमाया है उसे पूरा कर।"

लड़ाई की गर्मा-गर्मी

अरब के रिवाज के मुताबिक़ पहले एक-एक करके लड़ाई हुई, और फिर थोड़ी देर में एक फ़ौज दूसरी फ़ौज से गुथ गई। घमासान की लड़ाई शुरू हो गई। उस दिन के हँगामे के बीच एक तेज़ आँधी ने सारे इलाक़े को लपेट में ले लिया। किसी को किसी की ख़बर न रही।

अंजाम

17 रमज़ान (13 मार्च सन् 624 ई॰) सोमवार की सुबह को लड़ाई शुरू हुई और दोपहर न होने पाई कि क़ुरैश की पूरी फ़ौज तितर-बितर हो गई। मक्का के बड़े-बड़े सरदार मारे गए। अबू-जह्ल, उत्बा, शैबा सभी मारे गए। लगभग सत्तर आदमी मारे गए, उतने ही बन्दी हुए। बाक़ी जो बचे सिर पर पैर रखकर भागे। मुड़कर न देखा कि साथी किस हाल में हैं। लड़ाई ख़त्म होने के बाद आप (सल्ल॰) ने लाशों के दफ़न करने का इन्तिज़ाम किया। मुसलमानों की लाशें कम थीं। उन्हें रेत में दफ़न कर दिया गया। दुश्मन बहुत मारे गए थे। उनकी लाशें एक गढ़े में दबा दी गईं। लड़ाई में आप (सल्ल॰) का यही दस्तूर था।

क़ैदियों के साथ बरताव

मदीना पहुँचकर क़ैदियों को सब मुसलमानों में बाँट दिया गया। नबी (सल्ल०) ने नसीहत फ़रमाई कि इनके साथ अच्छा बरताव करना। उस रात सब क़ैदी इकट्ठे ही थे, अभी बाँटे नहीं गए थे। आप (सल्ल०) के चचा अब्बास भी बन्दी होकर आए थे। उन्हें किसी ने बहुत कसकर बाँधा था। बन्धन की तकलीफ़ से वे कराह रहे थे। उनकी आवाज़ सुनकर आप (सल्ल०) को नींद न आई। रात देर तक जागते रहे। किसी ने पूछा तो बताया, "चचा कराह रहे हैं, उन्हें तकलीफ़ है।" उन्होंने जाकर बन्धन ढीले कर दिए। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तो फिर सब की गिरहें एक जैसी कर दो।" क़ैदियों में से अबू-उज़ैर नामी एक क़ैदी अनसारी के हिस्से में पड़ा। वह अपना हाल बयान करते हुए कहता है, "उन लोगों को नबी की हिदायत का इतना ध्यान रहता था कि सवेरे का खाना हो या रात का, मुझे रोटी खिलाते और ख़ुद खजूरें खाते। रोटी का थोड़ा-सा टुकड़ा भी मिल जाता तो लेकर मेरे पास दौड़े आते। मैं हज़ार इनकार करता, लेकिन वे न मानते।"

इन क़ैदियों को बाद में मुआवज़े की रक़म लेकर छोड़ दिया गया। कुछ लोग यह रक़म अदा न कर सके थे। उनके लिए यह आसानी की गई कि दस मुसलमानों को लिखना-पढ़ना सिखा दें तो छोड़ दिए जाएँगे।

ऐसे लोगों को हारना ही चाहिए

मुशरिकों को अपनी तादाद और ताक़त पर बड़ा घमंड था। उस रात को जिसकी सुबह उनके लिए हार और मौत का पैग़ाम लाई, शराब पीने और नाच-गाने में मशग़ूल थे। उनमें इख़्तिलाफ़ था। कुछ लोग तो सिर्फ़ इसलिए लड़ रहे थे कि उनकी क़ौम के लोग उन्हें बुज़दिल न कहें, अन्दर से उनका दिल लड़ने को न कहता था। ऐसी ही एक मिसाल 'उत्बा' की थी। वे किसी उसूल की ख़ातिर जंग में शामिल न थे। अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की दुश्मनी में फ़साद बरपा कर रहे थे। वे मरने के बाद किसी ज़िन्दगी के क़ायल न थे। मौत को ज़िन्दगी के आराम-आसाइश का ख़ातिमा कहते थे, इसलिए मौत का डर उनके दिल में समाया हुआ था। वे ईमान की दौलत

से महरूम थे। उनको न अपने ऊपर भरोसा था, न किसी ग़ैबी ताक़त पर।

इन अन्दरूनी क़मज़ोरियों के साथ जो फ़ौज मैदान में आएगी उसके अंजाम का फैसला ज़्यादा ग़ौरो-फ़िक्र का मुहताज नहीं।

कामयाबी तादाद से नहीं अल्लाह की मदद से मिलती है

जो मौत से आँखें मिलाने की हिम्मत रखता हो, उससे लड़ना और जीत जाना आसान नहीं। मुसलमान मरने से नहीं डरते थे। हार हो या जीत, दोनों पहलुओं के बारे में पक्का यक़ीन था। वे अपने नबी को सच्चा मानते थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) के फ़रमाने के बाद कि मैं इस्लाम-दुश्मनों की हार का नज़ारा अपनी आँखों से देख रहा हूँ, उन्हें लड़ाई के अंजाम के बारे में कोई शक न था। फिर लड़ाई के बीच में वह्य के ये शब्द प्यारे नबी (सल्ल॰) की ज़ुबान पर जारी थे, "यह गरोह हारेगा और पीठ दिखाकर भागेगा।" उन्हें अल्लाह की बात पर यक़ीन था। उन्हें न कोई ज़ेहनी उलझन थी और न उनके दिल में किसी तरह की कमज़ोरी थी।

मरने के बाद की ज़िन्दगी और आख़िरत की जवाबदेही के यक़ीन ने उनके अन्दर फ़र्ज़ का एहसास पैदा कर दिया था, जिसके बाद इनसान बड़े-से-बड़े ख़तरों की कोई परवाह नहीं करता। अल्लाह और उसके रसूल की ख़ुशी हासिल करना उनकी ज़िन्दगी का मक़सद बन चुका था। दिन-के-दिन और रात-के-रात होने में उनको शक हो सकता था, नबी और उनकी बात के हक़ होने में उन्हें ज़रा भी शक न था। घमासान की लड़ाई हो रही थी और उसके बीच एक अनसारी नौजवान इत्मीनान से खड़ा खजूरें खा रहा था। उसका नाम उमैर-बिन-हुमाम था। उसने आप (सल्ल॰) को यह फ़रमाते हुए सुना, "आज जो इन मुशरिकों के मुक़ाबले जमकर लड़ेगा और पीठ न दिखाएगा, अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल करेगा।" कहने लगा, "अच्छा तो मुझमें और जन्नत में सिर्फ़ इतना-सा फ़ासला है कि ये लोग मुझको क़त्ल कर दें। वह हाथ से खजूरें फेंक, तलवार खींचकर दुश्मन के बीच में घुस गया और बहादुरी से लड़ता हुआ शहीद हुआ। इस लड़ाई के अंजाम ने साबित कर दिया कि कामयाबी तादाद की ज़्यादती से नहीं मिलती, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह की मदद से हासिल होती है।"

उहुद की लड़ाई

'उहुद' एक पहाड़ का नाम है। यह पहाड़ मदीना के उत्तर-पश्चिम में लगभग दो मील की दूरी पर है। इस बार की लड़ाई इस पहाड़ की घाटी में हुई। मुशरिकों की सेना इसी घाटी के सिरे पर मदीना के आमने-सामने जमा हुई। तीन हज़ार आदमी थे। सात सौ इनमें से लोहे के कवच पहने हुए थे। दो सौ घोड़े साथ थे। सतरह औरतें थीं। औरतें दफ़ बजा-बजाकर गातीं और बद्र की लड़ाई में मारे जानेवालों का नाम ले-लेकर रोती-पीटती थीं। मतलब यह था कि सिपाहियों को जोश आए, लड़ने में पीछे न हटें।

यह सेना मक्का से चली तभी मुसलमानों को इसकी ख़बर मिल चुकी थी। आप (सल्ल॰) ने साथियों से मशूवरा किया। जो लोग किसी मजबूरी की वजह से बद्र की लड़ाई में शरीक न हो सके थे, उनको फ़िक्र थी कि खुलकर मुक़ाबला हो। अल्लाह की राह में बहादुरी दिखाने और उसकी ख़ुशी हासिल करने का मौक़ा मिले। वे कहते थे कि मदीना से निकलकर मुशरिकों का सामना किया जाए। आप (सल्ल॰) की अपनी राय आबादी में रहकर लड़ने की थी। जब देखा कि ज़्यादातर लोग बाहर निकलकर लड़ने के हक़ में हैं तो आप (सल्ल॰) ने वही राय मान ली। अकसर ऐसा होता कि अगर किसी मौक़े पर अल्लाह का कोई हुक्म न होता तो आप (सल्ल॰) उसी राय के मुताबिक़ काम करते, जिसकी तरफ़ ज़्यादा लोग होते। आप (सल्ल॰) के साथियों का भी यही ढंग था कि वे अपनी राय उस समय तक ज़ाहिर करते रहते, जब तक यह मालूम न हो जाता कि अल्लाह और उसके रसूल के हुक्म से उनकी राय टकरा नहीं रही है।

मुसलमानों की सेना में कुल सात सौ आदमी थे, उनमें से सिर्फ़ सौ ज़िरह पहने हुए थे और इतने आदमियों के बीच सिर्फ़ दो घोड़े थे। इन लोगों ने 'उहुद' के नीचे मोर्चा लगाया। पहाड़ उनकी पीठ पर था। पचास तीरंदाज़ थे। आप (सल्ल॰) ने उनको एक छोटे-से टीले पर मुक़र्रर किया और कहा, "तुम यह देखते रहो कि पीछे से हमला न होने पाए। तीरों की बौछार से दुश्मनों को क़रीब न आने दो। होशियार! अपनी जगह हरगिज़ न छोड़ना,

जब तुम अपनी जगह पर जमे रहोगे, हमारा पल्ला भारी रहेगा। अगर तुम देखो कि गिद्ध हमारी बोटियाँ नोच रहे हैं तो भी अपनी जगह न छोड़ना। अगर यह देखो कि हमने दुश्मन को मात दे दी है तो भी मेरे बुलाए बग़ैर इस टीले से न हटना।"

पहला धावा

लड़ाई की शुरुआत हुई। बद्र की लड़ाई की तरह आज भी मुसलमानों का पल्ला भारी था। हज़रत अली, हज़रत हमज़ा, हज़रत साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ियल्लाहु अन्हुम) और दूसरे मुहाजिर तथा अनसार अपनी तलवार के जौहर दिखा रहे थे। हज़रत अबू-दुजाना अनसारी (रज़ि॰) का तो यह हाल था कि तलवार कुंद हो तो उसको पत्थर पर तेज़ करते और फिर दुश्मनों पर टूट पड़ते। कोई न था जो इस्लाम-दुश्मनों का झंडा हाथ में लेकर सीधा खड़ा हो सकता था। जिसके हाथ में झंडा पहुँचता, इन बहादुरों की तलवारें मौत की तरह उसके सिर पर जा पहुँचतीं और वह जहन्नम की राह लेता। आख़िर में दुश्मन-फ़ौज में अफ़रा-तफ़री फैल गई। लोग तितर-बितर हो गए और सिर पर पाँव रखकर भागने लगे। यही वह नाज़ुक मौक़ा था, जब मुसलमान अपने सरदार का हुक्म भूल गए। मामूली सरदार नहीं अल्लाह का रसूल, जिसकी हिदायत के ख़िलाफ़ काम करके फ़ायदे की उम्मीद कभी नहीं की जा सकती थी। इनसानी कमज़ोरी फ़र्ज़ के एहसास पर ग़ालिब आ गई। तीरंदाज़ों ने अपनी जगह छोड़ दी और माले-ग़नीमत जमा करने में लग गए।

आप (सल्ल॰) का हुक्म भूल गए, अफ़रा-तफ़री फैल गई

ख़ालिद-बिन-वलीद उस समय तक मुसलमान नहीं हुए थे। मुशरिकों के सवार दस्ते की कमान उनके हाथ में थी। तीरंदाज़ों का टीले से हटना था कि वे अपने बचे-खुचे साथियों के साथ होशियारी से पीछे पहुँचे और हमला कर दिया। मुसलमान तो ग़नीमत का माल जमा करने में लगे हुए थे, वे समझ बैठे थे कि जंग ख़त्म हो गई और सच यह है कि जंग ख़त्म हो ही गई थी अगर तीरंदाज़ दस्ता अपनी जगह न छोड़ता, अचानक जो हमला

हुआ तो बौखला गए। दोनों फ़ौजें एक-दूसरे से ऐसी गड्मड् हुईं कि किसी को किसी की सुध न रही। इसी हंगामे में एक आदमी ने हज़रत मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि०) को शहीद करके यह ख़बर उड़ा दी कि (तौबा! तौबा!) उसने प्यारे नबी (सल्ल०) को शहीद कर दिया। इस ख़बर ने मुसलमानों की रही-सही अक्ल भी गुम कर दी। बड़ी अफ़रा-तफ़री फैल गई।

अब कुछ लोग जिन्हें सही हाल नहीं मालूम था, यह सोचकर दुश्मन के झुंड में घुस गए कि आप (सल्ल०) के बाद अब ज़िन्दगी बेकार है। 'उहुद' की इस घाटी में अपने प्यारे नबी पर क़ुरबान हो जाना है, लौटकर मदीना नहीं जाना है।

प्यारे नबी (सल्ल०) के दीवाने

मुहाजिरीन और अनसार में से चौदह बहादुर जवान नबी (सल्ल०) को चारों तरफ़ से घेरे में लिए हुए थे और दुश्मनों के हर वार को अपने ऊपर ले रहे थे। आप (सल्ल०) पर क़ुरबान हो जाने की ख़ुशनसीबी के मुक़ाबले में ज़िन्दगी की तमाम पूँजी उन्हें मामूली नज़र आती थी। ईमान का वे यही तक़ाज़ा समझ रहे थे, इसलिए कि उन्हें यक़ीन था कि इस तरह अगर वे शहीद होंगे तो उन्हें जन्नत हासिल होगी।

मैं दुनिया के लिए रहमत बनाकर भेजा गया हूँ

दुश्मन नबी (सल्ल०) के क़रीब पहुँच गए। उनके पथराव से आप (सल्ल०) के दाँत शहीद हो गए। चेहरा ज़ख़्मी हो गया। कुंड की कड़ियाँ चेहरे में धँस गईं, उनसे ख़ून बहने लगा। ऐसे में किसी ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इन ज़ालिमों को बद्दुआ दीजिए। अल्लाह इनको हलाक करे।" आप (सल्ल०) ने जवाब दिया, "मैं दुनिया के लिए रहमत बनाकर भेजा गया हूँ। लानत भेजना मेरा काम नहीं। ऐ अल्लाह! मेरी क़ौम के लोगों को सीधी राह दिखा। ये लोग नासमझ हैं।"

एक बहादुर औरत

मर्दों के अलावा एक बहादुर औरत भी इस लड़ाई में अपनी तलवार के जौहर दिखा रही थीं। उनका नाम उम्मे-उमारा नुसैबा-बिन्ते-काब था। इस

वक़्त तक पर्दे का हुक्म नहीं आया था। वे फ़ौज के साथ आई थीं, अपना क़िस्सा ख़ुद बयान करतीं हैं, "दिन के पहले पहर में मैं निकली कि देखूँ लोग क्या कर रहे हैं? मेरे पास एक मश्क थी, उसमें पानी था। ज़ख़्मियों की देखभाल करती, उन्हें पानी पिलाती गुज़र रही थी, मैंने देखा कि मुसलमानों का पल्ला भारी है। आप (सल्ल॰) के क़रीब आई। कुछ मुहाजिर और अनसार आप (सल्ल॰) के आसपास थे। दुश्मन पर हमारी धाक बैठी हुई थी। उनके पैर उखड़ चुके थे। अचानक क्या देखती हूँ कि जंग का पासा पलट गया। हमारी फ़ौज तितर-बितर हो गई। मैं फिर दौड़कर आप (सल्ल॰) के क़रीब पहुँची और तीर-तलवार से बढ़ते हुए दुश्मनों पर वार करने लगी। इसी दौरान में, वह आदमी उधर से आया जिसने आप (सल्ल॰) के बारे में झूठी ख़बर मशहूर की थी। मैंने उसका मुक़ाबला किया और जो लोग भी वहाँ थे, उनपर टूट पड़ी। कमबख़्त ने मेरे बाज़ू पर वार किया। यह देखो इतना गहरा ज़ख़्म लगा है। मैंने भी उसपर ज़बरदस्त हमला किया, मगर ख़ुदा का दुश्मन दोहरा कवच पहने हुए था।"

जीत कहीं हार न हो जाए

लड़ाई ख़त्म हो गई। मुशरिकों को जितनी कामयाबी हुई, बद्र के तजरिबे के बाद वे उसको भी बहुत समझते थे। मदीना पर हमले की हिम्मत न हुई। डर था जीत कहीं हार न हो जाए। उनकी फ़ौज वापस होने लगी तो आप (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) को उनके पीछे भेजा, फ़रमाया, "देखो किधर का रुख़ है। ख़ाली घोड़े साथ होंगे तो वापस जा रहे हैं। उनपर सवार हैं तो समझो नीयत बुरी है। हमारी आबादी पर हमले का इरादा है।" मुशरिकों ने सोचा बद्र की लड़ाई का बदला हो गया। बस ग़नीमत है घर लौट चलें। उन्होंने मक्का का रुख़ किया। हज़रत अली (रज़ि॰) वापस आ गए।

जंग का ज़ालिमाना बदला

उस ज़माने में एक बड़ी ज़ालिमाना रस्म थी। दुश्मनों की लाशों के पेट फाड़ डालते। नाक, कान हार बनाकर औरतें गले में पहनतीं। इस लड़ाई में भी मुशरिकों ने बदले के जोश में ये सारी बदतमीज़ियाँ कीं।

अबू-सुफ़ियान की बीवी हिन्दा तो हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) का कलेजा तक चबा गई। हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) की लाश के साथ तो ख़ास तौर पर हिन्दा ने बड़ी बदतमीज़ी की। आख़िरी आदमी जिसको उन्होंने क़त्ल किया था, उसपर झुके हुए थे कि वहशी (हिन्दा का ग़ुलाम) ने पीछे से हमला करके उनको शहीद कर दिया। फिर इन औरतों ने उस लाश के साथ, ज़िन्दगी में जिसके नाम से उनके मर्द काँपते थे, बेअदबियाँ कीं। ग़ुस्सा आदमी की अक़्ल ख़राब कर देता है। इनसान अच्छा ख़ासा जानवर बन जाता है। यह दीवानापन नहीं तो और क्या है!

मुसलमानों ने यह नज़ारा देखा तो ग़ुस्सा आना यक़ीनी था। बोले, "ख़ुदा ने हमें इन बदबख़्तों पर ग़लबा दिया तो हम इन बदतमीज़ियों की सज़ा देंगे। इनकी लाशों की ऐसी गत बनाएँगे कि हमेशा याद रहे।" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "नहीं, अल्लाह का दीन ऐसी ज़ालिमाना हरकतों की इजाज़त नहीं देता। हम बुराइयों की नक़्ल करने नहीं, उनको दुनिया से मिटाने आए हैं।"

साद-बिन-रबीअ कहाँ हैं?

नबी (सल्ल॰) अपने साथियों से बड़ी मुहब्बत रखते थे। सबके आराम और तकलीफ़ की फ़िक्र थी। सबके सुख-दुख में शरीक रहते। इस हलचल में भी आप (सल्ल॰) को साद-बिन-रबीअ़ का ख़याल आया। वे एक अनसारी थे। लोगों से फ़रमाया, "देखो वे कहाँ हैं? किस हाल में हैं? ज़िन्दा हैं या शहीद हो गए?" एक साहब उन्हें ढूँढने निकले। देखा तो एक तरफ़ पड़े हैं। अभी जान बाक़ी है। पास गए। कहा, "प्यारे रसूल (सल्ल॰) ने आपकी तलाश के लिए भेजा था, उन्हें फ़िक्र थी आप ज़िन्दा हैं या अल्लाह की राह में शहीद हो गए।" बोले, "मेरा सलाम अर्ज़ करना और कहना कि आपके ख़ादिम साद-बिन-रबीअ की ज़ुबान पर मरते दम ये बोल थे–

"ऐ अल्लाह! हमारे नबी को हम सबकी तरफ़ से बेहतरीन बदला दे, और हाँ, साथियों से मेरी यह बात ज़रूर कह देना, प्यारे नबी (सल्ल॰) तक दुश्मन की पहुँच हो गई है और तुममें से एक आँख भी खुली रह गई तो ख़ुदा

तुम्हारा कोई उज्र न सुनेगा।"

यह कहते-कहते जान निकल गई। अल्लाह का यह सिपाही मैदाने-जंग में हमेशा की नींद सो गया (इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन)।

वे साहब नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में वापस हुए और सारा क़िस्सा कह सुनाया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह साद-बिन-रबीअ पर रहमत नाज़िल फ़रमाए। ज़िन्दगी और मौत दोनों में वे दीन के सच्चे फ़िदाई थे।" अल्लाह, अल्लाह कैसे लोग थे! मौत की तकलीफ़ भी ख़ुदा और उसके रसूल की मुहब्बत की मिठास उनसे न छीन सकी।

ऐ अल्लाह! तारीफ़ और शुक्र तेरे ही लिए है

लाशों को दफ़न करने के बाद मदीना वापस होने के लिए नबी (सल्ल०) घोड़े पर सवार हुए। बाक़ी तमाम साथी भी आप (सल्ल०) के आसपास इकट्ठा हो गए। लगभग सभी ज़ख़्मी थे। चौदह औरतें भी थीं। आप (सल्ल०) बेतरतीबी और बदनज़्मी को पसन्द न फ़रमाते थे। बोले, "एक लाइन में खड़े हो जाओ।" मर्द खड़े हुए, उनके पीछे औरतें। आप (सल्ल०) ने दुआ के लिए हाथ उठाए—

"ऐ अल्लाह ! तू ही तारीफ़ के लायक़ है। तू फैलानेवाला हो तो कौन समेट सकता है और तू समेट ले तो किसमें ताक़त है कि कुशादगी दे! जिसको तू गुमराही में डाल दे, कोई उसको सीधी राह नहीं दिखा सकता और जिसको तू सीधी राह दिखा दे, किसकी ताक़त है जो उसको गुमराह कर सके! जो तू छीन ले, उसको कौन दे सकता है! जिसे तू दूर कर दे, उसे क़रीब करना किसके बस में है! जिसको तू क़रीब कर दे, उसे कौन दूर कर सकता है!"

फिर आप (सल्ल०) मदीना वापस हुए। जिन घरों के लोग उस लड़ाई में शहीद हुए थे, उनकी औरतों को तसल्ली देते। उनके लिए दुआ फ़रमाते। औरतों को समझाया, "अगर घर का कोई आदमी मर जाए तो अफ़सोस एक यक़ीनी बात है, मगर मुँह पर तमाँचे मारना, बाल नोचना, चेहरे को ज़ख़्मी करना ठीक नहीं।" नेक और भली औरतें थीं। फिर आप (सल्ल०) का फ़रमान। ग़म और रंज से बदहाल थीं, मगर मान गईं। उन्होंने ये सब कुछ न किया।

यह लड़ाई मार्च 625 ई॰ शव्वाल 3 हिजरी में हुई। 70 मुसलमान शहीद हुए और 23 दुश्मन मारे गए।

आज़माइश में एक सबक़

अबू-सुफ़ियान 'उहुद' की लड़ाई में मुशरिकों के सरदार थे। उनके पास बहुत ज़्यादा फ़ौज थी, फिर भी बहुत थोड़े-से मुसलमानों के मुक़ाबले में इस भारी फ़ौज के पैर उखड़ गए थे और अगर आप (सल्ल॰) के हुक्म पर तीरंदाज़ जमे रहते तो फ़तूह यक़ीनी थी। हार बेशक हुई, लेकिन इस आज़माइश ने आगे के लिए मुसलमानों को होशियार कर दिया। वे सीख गए कि अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) के हुक्म के ख़िलाफ़ काम करने का नतीजा ख़राब होता है। मुशरिक भी इस कामयाबी को एक इत्तिफ़ाक़ी बात समझते थे। बद्र का बदला मिल गया, इससे वे खुश ज़रूर थे, लेकिन अपनी ताक़त पर उनको अब वह भरोसा न था, जो उस रात था, जब लड़ाई से पहले बद्र के मैदान में वे ख़ुशियाँ मना रहे थे। यही वजह थी कि जीत जाने के बाद भी उनकी हिम्मत न हुई कि मदीना पर हमला करते या मुसलमानों की बाक़ी फ़ौज को बिलकुल ख़त्म कर देने की सोचते। अल्लाह पर यक़ीन और हैरत-अंगेज़ तंज़ीम ने मुशरिकों के हौसले ख़त्म कर दिए थे।

अल्लाह मुझे तुझसे बचा सकता है

4 हिजरी में कोई पाँच सौ मुसलमानों के साथ नबी (सल्ल॰) मदीना से रवाना हुए। मालूम हुआ था कुछ लोग लड़ने के लिए इकट्ठा हो रहे हैं। तलाश की गई, कहीं पता न चला। इधर-उधर जमाअतें भेजी गईं। उन्होंने वापस आकर ख़बर दी। शायद ख़बर सही न थी। यहाँ आसपास तो कोई नहीं, कुछ दूर और चले तो थोड़े से लोग मिले, मगर लड़ाई की नौबत न आई। दोनों गरोह आमने-सामने खड़े रहे। इसी मौक़े पर पहली बार ख़ौफ़ की नमाज़ पढ़ी गई। एक सफ़ नमाज़ अदा करती, बाक़ी लोग दुश्मन के मुक़ाबले के लिए होशियार खड़े रहते।

वापस हुए तो रास्ते में एक जगह पर जहाँ बबूल की क़िस्म के काँटेदार पेड़ थे, साया भी था, लोग ठहर गए। दोपहर का वक़्त था। ख़याल हुआ,

कमर सीधी कर लें तो आगे बढ़ें। आप (सल्ल॰) भी एक पेड़ के साए में आराम फ़रमाने लगे। अभी लोगों की आँख लगी ही थी कि आप (सल्ल॰) ने आवाज़ दी। आवाज़ कान में पड़ी न थी कि लोग जाग उठे और उस पेड़ की तरफ़ झपटे जिसके साए में आप (सल्ल॰) आराम फ़रमा रहे थे। क्या देखते हैं कि एक अजनबी आप (सल्ल॰) के पास बैठा हुआ है और आप (सल्ल॰) उसको देखकर मुस्करा रहे हैं। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "देखो, इस आदमी का नाम दुअसूर है। मैं सो रहा था। मेरी तलवार सिरहाने पेड़ से लटक रही थी। यह आदमी आया, इसने तलवार ख़ामोशी के साथ उतार ली। इतने में मेरी आँख खुल गई। यह मुस्कराकर कहने लगा : बताओ अब कौन तुमको मुझसे बचा सकता है? मैंने जवाब दिया, 'अल्लाह'। तुम सब जानते हो, इससे सच्चा जवाब हो भी क्या सकता था। इसके हाथ से तलवार गिर पड़ी और अब तो तुम देख ही रहे हो, यह मेरे सामने बैठा हुआ है।" आप (सल्ल॰) ने दुअसूर को और कुछ न कहा। बात ख़त्म कर दी। कहते भी क्या उसपर वैसे ही सकते का आलम तारी था। नबी (सल्ल॰) के इस बरताव से दुअसूर पर इतना असर पड़ा कि वह फ़ौरन मुसलमान हो गया।

मऊना के कुएँ पर

4 हिजरी, मई 625 ई॰ का क़िस्सा है। सफ़र का महीना था। 'उहुद' की लड़ाई को चार महीने हो चुके थे। एक दिन नबी (सल्ल॰) के पास आमिर क़बीले का एक आदमी आया। उसका नाम अबू-बरा आमिर-बिन-मालिक था। उसको लोग 'नेज़ाबाज़' कहते थे। आप (सल्ल॰) ने कहा, "भाई इस्लाम क़बूल करो। सच्चे उसूलों पर चलकर अपनी ज़िन्दगी सँवार लो।" उसने न इनकार किया, न इक़रार। कहने लगा, "बात तो अच्छी कह रहे हैं। ऐसा कीजिए कि कुछ लोगों को मेरे क़बीले में भेज दीजिए, वे मेरे क़बीलेवालों को दीन की बातें बतलाएँ। मेरा ख़याल है, इसका बहुत अच्छा असर होगा। क़बीलेवाले आपका दीन क़बूल कर लेंगे।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मुझे नज्दवालों से इत्मीनान नहीं। अबू-बरा ने जवाब दिया, "मैं उनकी हिफ़ाज़त का ज़िम्मेदार हूँ, उनपर आँच न आएगी।"

मुख़्तसर यह कि मुंज़िर-बिन-अम्र की रहनुमाई में आप (सल्ल॰) ने एक जमाअत रवाना कर दी। उनमें बहुत-से क़ुरआन के हाफ़िज़ भी थे। कोई 70 आदमी रहे होंगे। ये लोग मऊना के कुएँ पर पहुँचे। वहाँ से एक आदमी को आमिर-बिन-तुफ़ैल के पास आप (सल्ल॰) का ख़त लेकर भेजा। उस बदबख़्त ने ख़त पढ़ा तक नहीं। अरब और सारी दुनिया के रिवाज के ख़िलाफ़ उनको शहीद कर दिया और यही नहीं, बल्कि अपने हिमायती दूसरे क़बीलों को आवाज़ दी कि आओ, इन सबको घेर लो। आमिर क़बीले के लोग तो इस पुकार पर न आए। अलबत्ता दूसरे टूट पड़े। जिन्हें ज़िन्दगी की बरकतें देने गए थे, वे जान के भूखे हो गए। सच के पुजारियों की यह छोटी-सी टोली आख़िरी दम तक बहादुरी से इनका मुक़ाबला करती रही और आख़िरकार ये लोग लड़ते हुए शहीद हो गए।

नबी (सल्ल॰) को इस हादसे की ख़बर मिली। आप (सल्ल॰) को दुख हुआ। फ़रमाया, "यह सब अबू-बरा का किया हुआ है। मुझे पहले ही भरोसा न था। मजबूरन इन लोगों के भेजने पर राज़ी हुआ था।" अबू-बरा को किसी ने आप (सल्ल॰) के ये अलफ़ाज़ सुनाए। वे अपनी ग़लती पर बहुत शर्मिन्दा हुए और इसी ग़म में घुल-घुलकर मर गए।

सब तो शहीद हो गए। एक साहब अम्र-बिन-उमैया ज़मरी (रज़ि॰) की ज़िन्दगी थी। वे बचे रह गए। ज़ख़्म बहुत आए थे। बेहोश पड़े थे। मुशरिकों ने समझा चल बसे, फिर मालूम नहीं क्या जी में आया उन्हें छोड़ दिया। यह वहाँ से चले आए। मदीना वापस आ रहे थे। रास्ते में एक साएदार पेड़ के नीचे आराम करने बैठ गए। थोड़ी देर बाद उसी जगह दो मुसाफ़िर और साया देखकर आ ठहरे। इन्होंने पूछा, "कौन हो, कहाँ का इरादा है?" बोले, "आमिर क़बीले के हैं। सफ़र कर रहे थे। साया देखा बैठ गए।" ये जले हुए तो थे ही कुछ न बोले। चुप हो रहे। पेड़ का साया और ठंडी हवा, शायद थके हुए भी ज़्यादा थे। दोनों की आँख लग गई। इन्होंने दोनों को क़त्ल कर दिया और मदीना की राह ली। आप (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और सारा माजरा कह सुनाया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "बे जाने-बूझे तुमने उन ग़रीबों को मौत के घाट उतार दिया, बहुत बुरा किया। उनको मैंने पनाह

दे रखी थी। अब हो ही क्या सकता है। उनके ख़ून का हर्जाना तो मैं अदा ही करूँगा।"

सफ़र की आख़िरी मंज़िल

मऊना के कुएँ पर जो हाफ़िज़ शहीद हुए उनमें आमिर-बिन-फ़ुहैरा भी थे। मक्का के मुशरिक उन्हें बहुत तकलीफ़ पहुँचाते थे। हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने ख़रीदकर उन्हें आज़ाद कर दिया था। यही थे जो शाम के अंधेरे में ग़ारे-सौर के मुँह पर बकरियाँ हाँककर ले जाते, ताकि आप (सल्ल०) उनके दूध से भूख मिटा लें। फिर जब चार आदमियों का छोटा-सा क़ाफ़िला मक्का से हिजरत करके मदीना पहुँचा तो रास्ता बतानेवाले के अलावा एक ये भी थे, जो हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के पीछे ऊँटनी पर बैठे थे। अल्लाह के रास्ते में उन्होंने मक्का से जो सफ़र शुरू किया था, मऊना की जगह पर उसकी आख़िरी मंज़िल थी। नहीं, मैंने ग़लत कहा, उनकी आख़िरी मंज़िल तो जन्नतुल-फ़िरदौस है।

आस्तीन के साँप

आमिर क़बीले के दो आदमियों को अम्र-बिन-उमैया ज़मरी (रज़ि०) ने क़त्ल कर दिया था जो मऊना के कुएँ पर से बचकर चले आए थे। उनके ख़ून का हरजाना भेजना ज़रूरी था। वे दोनों आदमी आप (सल्ल०) की पनाह में थे। यहूदियों से जो समझौता हुआ था उसके तहत ख़ून के हरजाने की रक़म में यहूदियों की शिरकत भी ज़रूरी थी। आप (सल्ल०) इनके एक ख़ानदान बनू-नज़ीर के पास गए।

उन्होंने दिखलाने को तो रक़म में शरीक होने पर आमादगी ज़ाहिर की। इधर आप (सल्ल०) से बातचीत करते रहे और उधर से एक यहूदी को इशारा किया कि ऊपर से एक भारी पत्थर गिरा दे। आप (सल्ल०) एक दीवार के साए में बैठे थे। अल्लाह ने आप (सल्ल०) को वह्य के ज़रिए उसकी ख़बर कर दी। आप (सल्ल०) वहाँ से उठकर चले आए। यहूदियों ने फिर आप (सल्ल०) को बुलाया। आप (सल्ल०) ने कहला भेजा। अब मुझको तुमपर भरोसा नहीं। नया समझौता करो तो तुमसे बात की जा सकती है। पुराना

समझौता ख़त्म।

यहूदियों के एक ख़ानदान बनू-क़ुरैज़ा ने नया समझौता कर लिया। बनू-नज़ीर के पास मज़बूत क़िले थे, वे इसी घमंड में थे। अकड़ते रहे। आख़िरकार जून 625 ई॰ रबीउल-अव्वल 4 हिजरी में आप (सल्ल॰) ने इन क़िलों को घेर लिया। दो हफ़्तों तक वे अपने क़िले में बैठे रहे। फिर ख़ुद ही यह शर्त पेश की कि हम अपना माल और असबाब लेकर यहाँ से चले जाएँ, हमको इसकी इजाज़त दी जाए। आप (सल्ल॰) ने इस शर्त के साथ इजाज़त दी कि हथियार के क़िस्म की कोई चीज़ न ले जाएँ। बाक़ी जितना मुमकिन हो ले जा सकते हैं। घेराव उठा लिया गया।

जाने लगे तो दरवाज़ा और चौखट तक उतार ले गए। यहाँ तक कि दीवारें तक भी सलामत न छोड़ीं, अपने मकान को ज़मीन के बराबर कर दिया। जलन यह थी कि मुसलमान इनसे फ़ायदा न उठा सकें। मदीना से निकलकर ये लोग ख़ैबर में और उनमें से कुछ जाकर शाम में आबाद हो गए।

मदीना तो इन लोगों ने छोड़ दिया, लेकिन वहाँ के नख़लिस्तानों और हरे-भरे लहलहाते हुए खेतों का ख़याल करते तो उनको बहुत दुख होता। दुश्मनी की आग अन्दर-ही-अन्दर सुलग रही थी। मुसलमानों को तकलीफ़ पहुँचाने का ख़याल उनके दिमाग़ से एक लम्हे के लिए न हटता था। आख़िरकार शव्वाल 5 हिजरी, फ़रवरी 627 ई॰ में उन्होंने एक ग़लती कर भी डाली।

ख़न्दक़ की लड़ाई

ख़ैबर के यहूदी जो मदीना से देश निकाला पाकर वहाँ जा बसे थे, क़ुरैश के पास गए। उनसे कहा कि तुम हमारा साथ देने को कहो तो हम मुसलमानों से निपट लें। मक्कावाले बुतों के पुजारी थे, इस्लाम उनको एक आँख न भाता था। इस्लाम की तालीम है कि इबादत के लायक़ सिर्फ़ अल्लाह है, कोई उसका शरीक नहीं। इसमें यह सब कुछ था, लेकिन वे यहूदियों के मज़हब को भी अच्छा नहीं समझते थे। उन्हें मालूम था कि

हज़रत मूसा (अलैहि०) का दीन अगर कुछ मेल खाता है तो इस्लाम से, बुतों की पूजा से तो इसका भी कोई लगाव नहीं। उन्होंने यहूदियों से पूछा, "पहले यह बताओ कि हमारा दीन अच्छा है या यह नया दीन जो हमारे ही ख़ानदान के एक नौजवान के हाथों फैल रहा है।" यहाँ क्या था, यहूदी तो मानो सच न बोलने की क़सम खा चुके थे, फ़ौरन बोले, "तुम्हारा दीन, तुम्हारे दीन का इस नए दीन से क्या मुक़ाबला!" क़ुरैश के भोले-भाले लोग फूले न समाए और यहूदियों की मदद के लिए तैयार हो गए। यहाँ से चलकर ख़ैबरवाले 'ग़तफ़ान' क़बीले के पास गए। उनसे भी इसी तरह की चाल-फेर की बातें कीं। उन्होंने साथ देने का वादा कर लिया। चुपके-चुपके मदीना पर हमले की तैयारियाँ होने लगीं।

आप (सल्ल०) को ख़बर मिली। आप (सल्ल०) ने दस्तूर के मुताबिक़ साथियों को इकट्ठा किया। मश्वरा हुआ। हज़रत सलमान (रज़ि०) ने राय दी। शहर के आसपास ख़न्दक़ खोद ली जाए। वे फ़ारिस के रहनेवाले थे। फ़ारिसवालों की आए दिन यूनानियों से लड़ाई रहती थी। वहाँ इस तरह लड़ने का रिवाज था। सब लोगों ने उनकी राय मान ली। ख़न्दक़ खोदने की तैयारी होने लगी।

सलमान (रज़ि०) हममें से हैं

सलमान (रज़ि०) हर काम बड़े सलीक़े से करते थे। बेक़ायदगी और बद-इन्तिज़ामी आप (सल्ल०) को बिलकुल पसन्द न थी। इसलिए आप (सल्ल०) ने ख़न्दक़ खोदनेवालों की टोलियाँ बना दीं। हर टोली में दस आदमी थे। ख़न्दक़ को कई हिस्सों में बाँटकर निशान डाल दिया। हज़रत सलमान (रज़ि०) ज़रा अच्छे डील-डोल के थे। फिर उनको इसका तजरिबा भी था। हर टोली चाहती कि वे उसमें रहें। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "सलमान की गिनती हमारे घरवालों में होगी। वे हमारे हिस्से में हैं।" हज़रत सलमान (रज़ि०) की ख़ुशी का क्या कहना था!

ख़न्दक़ खुदने लगी

ख़न्दक़ खुदने लगी। हर टोली जोश के साथ अपने काम में लगी हुई

थी। कोई मिट्टी खोदता, कोई उसको बाहर फेंकता। भारी पत्थर उठा-उठाकर ख़न्दक़ से बाहर इकट्ठा किए जाते। उनको सलीक़े से एक तरफ़ रख दिया जाता। प्यारे रसूल (सल्ल॰) भी एक टोली के साथ अपने हिस्से का काम कर रहे थे। ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े, मालिक और नौकर का फ़र्क़ न था। अल्लाह के दीन की हिफ़ाज़त में उसके नेक बन्दे और उसका आख़िरी पैग़म्बर भूख-प्यास भूले हुए थे। मेहनत और तकलीफ़ की परवाह न थी। कितने थे जिनके मुँह में तीन-चार दिन से एक दाना भी न गया था। ख़ुद आप (सल्ल॰) के पेट पर दो-दो पत्थर बँधे हुए थे। यह हाल था, फिर भी कोई देखता तो कहता, इन लोगों से ज़्यादा इत्मीनान शायद ही दुनिया में किसी को है। उनके चेहरे पर ख़ुशी थी, इत्मीनान और वक़ार था। ख़ुशी इस बात की कि अल्लाह ने उनको अपने दीन की ख़िदमत का मौक़ा दिया। इत्मीनान इस चीज़ का कि उनका वक़्त एक नेक काम में ख़र्च हो रहा है और वक़ार इस वजह से कि वे अपने वतन ही नहीं सारी दुनिया के बातिल-परस्तों से जो लड़ाई लड़ रहे थे, उसमें उनकी वह जगह थी जो ऊँची हिम्मत और हौसलामन्द इनसानों की हुआ करती है।

ख़न्दक़ खोदी जा रही थी कि एक बड़ा पत्थर रास्ते में आ गया, कुदाल उसपर असर न करती थी। कोशिश करके हार गए। अब क्या हो, जो लाइन आप (सल्ल॰) ने खींच दी थी उसके ख़िलाफ़ खुदाई बग़ैर आप (सल्ल॰) की हिदायत के कैसे हो सकती थी, और पत्थर की चट्टान अपनी जगह से हिलने का नाम तक न लेती थी। आख़िरकार आप (सल्ल॰) को ख़बर दी गई। आप (सल्ल॰) तशरीफ़ लाए। पेट पर फ़ाक़े से पत्थर बाँधे हुए थे। कुदाल हाथ में लेकर उस जगह पर मारी। चट्टान टुकड़े-टुकड़े हो गई। कुदाल की चोट से चिंगारियाँ उठीं। दूर-दूर रौशनी फैल गई। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "इस रौशनी में शाम, फ़ारिस, मदायन और यमन पर दीन का सिक्का बैठा हुआ नज़र आ रहा है।"

आप (सल्ल॰) ने सच फ़रमाया था। अल्लाह के नेक बन्दों के हौसले और पक्के इरादों को देखकर उस वक़्त की हर बड़ी ताक़त बहुत थोड़े वक़्त में ख़त्म हो गई।

उनका कोई उसूल न था

ख़न्दक़ के पार मदीना की तरफ़ तीन हज़ार मुजाहिद कमर बाँधे खड़े थे, दूसरी तरफ़ क़ुरैश की निगरानी में जिस हुजूम ने डेरा डाल रखा था, उसकी तादाद दस हज़ार थी। उसमें क़ुरैश, बनू-नज़ीर का यहूदी ख़ानदान और दोनों के साथी दूसरे क़बीले शामिल थे। आगे चलकर इस फ़ौज में और बढ़ोत्तरी इस वजह से हो गई कि बनू-क़ुरैज़ा के यहूदी भी दुश्मनों से आ मिले। पहले इन लोगों ने समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी और मुसलमानों से लड़ने से साफ़ इनकार कर दिया था। उनके सरदार ने तो यहाँ तक किया कि जो लोग भड़काने आए थे, उनसे कह दिया कि मैं तुमसे मुलाक़ात नहीं करना चाहता, मगर आख़िर कब तक? भड़कानेवालों ने ऐसी पट्टी पढ़ाई कि वह भी मोम हो गया। ख़ुशामद-दरामद ने उस यहूदी ख़ानदान को भी मुसलमानों से काटकर उनसे जंग करने पर राज़ी कर दिया। जो लोग उसूल को आदमी से कम क़ीमत समझते हैं उनका यही हाल होता है। वे आदमी को ख़ुश करने के लिए उसूल को तोड़ देते हैं। बनू-क़ुरैज़ा के यहूदियों ने भी यही किया। उनका कोई उसूल न था, उन्होंने समझौता तोड़ दिया।

सच्चे और नेक मुसलमानों में कुछ मुनाफ़िक़ लोग भी मिले हुए थे

वैसे तो बनू-क़ुरैज़ा के यहूदी मदीना की ख़ास आबादी के बाहर रहते थे। फिर भी इतना फ़ासला न था कि उनकी मुख़ालफ़त के बाद शहरी आबादी को महफ़ूज़ समझा जा सके। शहर से बिलकुल मिले हुए उनके क़िले थे। उनके दुश्मनों से मिल जाने के बाद, मामले ने नाज़ुक सूरत इख़्तियार कर ली। क़ुदरती बात है, अगर चारों तरफ़ से ख़तरे किसी को घेर लें तो इनसानी कमज़ोरी की बुनियाद पर तरह-तरह के ख़यालात सताने लगते हैं। कुछ मुसलमान भी ऐसे थे, जिन बेचारों को तरह-तरह के ख़यालों ने घेर लिया। एक मुश्किल और थी और वह सबसे बड़ी मुश्किल थी। वह यह कि सच्चे और नेक मुसलमानों में कुछ मुनाफ़िक़ भी मिले हुए थे। मुनाफ़िक़ लोग ज़ाहिर में अल्लाह-रसूल के साथ थे, मगर अन्दर से इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के

हमदर्द थे। ये लोग हर घड़ी इस कोशिश में लगे रहते कि अपनी बातचीत से मुसलमानों के इरादे और ईमान दोनों को कमज़ोर कर दें। उनके दिल में मौत का डर पैदा करें। बद्र और उहुद की लड़ाई में उन्होंने जो कुछ सीखा है, उसको उनके दिल और दिमाग़ से निकाल दें। बद्र और उहुद की लड़ाई में उन्होंने सीखा था कि हक़ ही अस्ल ताक़त है। तादाद की कमी-ज़्यादती कोई चीज़ नहीं। अल्लाह की मदद हो तो छोटी टोली बड़ी टोली से जीत जाती है। अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की नाफ़रमानी का अंजाम अच्छा नहीं होता। जीत हार में बदल जाती है। मुनाफ़िक़ चाहते थे ये काम की बातें मुसलमान भूल जाएँ। ख़न्दक़ के उस पार जो टिड्डी दल समुद्र की तरह उमड़ रहा था। उसको देखकर उनके दिल लरज़ जाएँ। उनमें आपसी फूट पड़ जाए।

वे किसी कशमकश को ज़िन्दगी और मौत के पैमाने से नहीं नापते थे

सच्ची बात यह है कि अब की बार अरब की क़रीब-क़रीब सारी मुशरिकाना ताक़त मुसलमानों के ख़िलाफ़ इकट्ठा होकर आ गई थी। इस्लाम की इशाअत और उसके बताए हुए उसूलों पर मदीना में जो ज़िन्दगी का नक़्शा धीरे-धीरे बन रहा था उसको मिटा देने के इरादे से क़ुरैश, यहूदी और इन दोनों के असर वाले क़बीले एक ताक़त होकर आए थे। लेकिन तादाद की कमी और अन्दर और बाहर की मुख़ालफ़त के बावजूद मुसलमान उस ज़माने की ज़रूरत के मुताबिक़ इतने मुनज़्ज़म और इतने होशियार थे कि सारा अरब उनके सामने बेबस होकर रह गया था। प्यारे रसूल (सल्ल०) ने उनमें तंज़ीम, सलीक़ा, एहतियात और मिल-जुलकर रहने के साथ-साथ अल्लाह के दीन पर ऐसा पक्का यक़ीन और अपने उसूलों के लिए जीने-मरने का ऐसा जज़्बा पैदा कर दिया था जो बजाय ख़ुद किसी जमाअत के लिए ताक़त का बहुत बड़ा ख़ज़ाना हुआ करता है। वे किसी कशमकश को ज़िन्दगी और मौत के पैमाने से नापने के बजाय, सिर्फ़ हक़ व नाहक़ की कसौटी पर परखने के आदी बन गए थे। मौत से डरना उन्होंने छोड़ दिया था और ज़िन्दगी को वे अपनी चीज़ न समझते थे। इसलिए बड़ी-से-बड़ी ताक़त से आँख मिलाना उनके लिए मामूली बात थी।

उनके पैर ज़रा भी न डगमगाए

यहूदियों के साथ जिन दूसरे क़बीलों से समझौता हुआ था, उनमें से दो यह कहकर अलग हो गए कि हम लोग मदीना के बाहर रहते हैं। हमारे मकान खुले मैदान में और ग़ैर-मुहफ़ूज़ हैं। मुनाफ़िक़ों ने बड़ी कोशिश की। मुसलमानों को बहुत हिलाया-डुलाया, और अंदेशों से बहुत डराया, मगर जिन्हें अल्लाह पर भरोसा हो तो उनको अंदेशे कब डरा सकते हैं! उनके क़दम ज़रा न डगमगाए। एक-दो दिन नहीं, पूरे एक महीने तक घेराव क़ायम रहा। इस दौरान दोनों तरफ़ से मामूली तीरंदाज़ी होती रही, फिर भी इतनी बड़ी फ़ौज की हिम्मत न हुई कि ख़न्दक़ को पार करने का साहस करती। एक-दो ने कोशिश की, लेकिन जो आगे बढ़ा किसी-न-किसी बहादुर मुजाहिद ने फ़ौरन उसका काम तमाम कर दिया।

एक दिलचस्प क़िस्सा

इस लड़ाई के दौरान एक बहुत दिलचस्प क़िस्सा पेश आया। हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि॰) का नाम तो तुमने सुना ही होगा। वे शायर थे और प्यारे रसूल (सल्ल॰) से उनको बड़ी मुहब्बत थी। उन्होंने अपनी शेर-शायरी में प्यारे रसूल (सल्ल॰) की अच्छाइयाँ बयान कीं। इस्लाम की ख़ूबियाँ गिनाईं। क़ाब-बिन-अशरफ़ वग़ैरा मुशरिक शायर मुसलमानों का जो मज़ाक़ उड़ाते, इस्लाम के ख़िलाफ़ लोगों को उभारते, हस्सान-बिन-साबित (रज़ि॰) इन सबका जवाब देते। उन्होंने इस तरह बहुत-सी अच्छी और ज़ोरदार शायरी कही हैं, तुम उनको पढ़ो तो अन्दाज़ा होगा कि अच्छे शायर कैसे होते हैं।

एक यहूदी दुश्मन क़िले के चारों तरफ़ चक्कर लगा रहा था

ख़ैर ये बातें तो इसलिए थीं कि तुम्हारी थोड़ी-बहुत उनसे पहचान हो जाए। हज़रत हस्सान (रज़ि॰) मदीना के बाहर एक क़िले में रहते थे। इस लड़ाई के ज़माने में प्यारे रसूल की फूफी हज़रत सफ़ीया (रज़ि॰) भी इस क़िले में थीं और बहुत-सी औरतें और बच्चे भी थे। हिफ़ाज़त के ख़याल से उन सबको यहाँ ठहराया गया था। हज़रत हस्सान (रज़ि॰) को उनकी देखभाल

सुपुर्द की गई थी। एक दिन हज़रत सफ़ीया (रज़ि॰) ने देखा कि एक यहूदी क़िले के गिर्द चक्कर लगा रहा है। यहूदी समझौता तोड़ चुके थे। इसलिए क़ुदरती तौर पर उनको शक हुआ कि आख़िर यह आदमी क्यों चक्कर काट रहा है? इसके जी में क्या है? मुसलमान मर्द तो एक भारी फ़ौज का सामना कर रहे हैं। वहाँ से हटकर हमारे बचाव के लिए कैसे पहुँचेंगे? यहूदियों ने हमपर हमला कर दिया तो क्या होगा, अब क़िस्सा उन्हीं की ज़ुबानी सुनिए।

ऐ अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी! यह काम मुझसे न होगा

मैंने कहा, "ऐ हस्सान! तुम देख रहे हो, यह यहूदी क़िले के चारों तरफ़ चक्कर लगा रहा है। ख़ुदा की क़सम! इससे कुछ दूर नहीं कि जाकर दूसरे यहूदियों को मुसलमान औरतों और बच्चों के यहाँ मौजूद होने की ख़बर दे दे। यह इसी खोज में आया है। ऐसा हुआ तो बहुत बुरा होगा। तुम यह करो कि नीचे जाकर उसको ख़त्म कर दो। वापस न जाने पाए। वह बोले, "ऐ अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी! यह काम मुझसे न होगा।" मैंने समझ लिया यह इस काम के आदमी नहीं। क्या करती। मैंने ही अपने को तैयार किया। ख़ेमे का एक बाँस निकाला और चुपके-चुपके क़िले के नीचे पहुँची। वहाँ पहुँचकर मैंने उसको ज़रा भी सम्भलने का मौक़ा न दिया और ख़ेमे की चोब से मार-मारकर गिरा दिया। उसका काम तमाम करने के बाद क़िले में वापस आई। मैंने हस्सान से कहा, "लो अब तो जाओ, उसकी तलवार वग़ैरा उतार लाओ।" मैं औरत हूँ उसके जिस्म को कैसे हाथ लगाती। वे बोले, "अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी! मैं यह सब कुछ न करूँगा। जाने भी दो, मार तो डाला ही तुमने, चलो क़िस्सा पाक हुआ। ख़तरा दूर हुआ।"

उनकी ख़िदमतों की क़ीमत नहीं घटती

इस क़िस्से से हज़रत हस्सान (रज़ि॰) की उन ख़िदमतों की क़ीमत नहीं घटती, जो उन्होंने अपनी अदबी सलाहियत और शायराना कमाल से दीन के लिए अंजाम दी। इससे सिर्फ़ यह मालूम होता है कि कुछ लोग क़ुदरती तौर पर कुछ काम अंजाम नहीं दे सकते। उनके अन्दर एक तरह की कमज़ोरी होती है। इससे यह भी मालूम होता है कि अल्लाह और उसके रसूल

(सल्ल॰) के हुक्म को बजा लाने के लिए सूझ-बूझ, बहादुरी और मौक़ा पड़ने पर कोशिश जिस तरह मर्दों के लिए ज़रूरी है, बिलकुल वैसे ही औरतों के लिए भी है। औरतों को सेहतमन्द, तन्दुरुस्त होना चाहिए और मौक़ा पड़ने पर अपनी हिफ़ाज़त के लिए तैयार रहना चाहिए।

दुश्मनों में फूट पड़ गई

कुछ दिनों के घेराव के बाद मुशरिकों और यहूदियों में फूट पड़ गई। वे एक-दूसरे से बदगुमान हो गए। धीरे-धीरे अपनी ताक़त पर उनका रहा सहा यक़ीन कमज़ोर होता चला गया। अल्लाह ने उनकी तबाही का यह सामान भी कर दिया कि रातों को ऐसी तेज़-तुन्द और ठंडी हवाएँ चलतीं कि ख़ेमे ज़मीन पर गिर पड़ते और पतीलियाँ चूल्हों पर न ठहरतीं। एक हलचल मच जाती, दिन-भर मुसलमानों के सामने लड़ाई के मैदान में कमर-बस्ता खड़े रहते, रात को आराम करना चाहते तो यह आफ़त घेर लेती।

आप (सल्ल॰) ने हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) को भेजा कि पता लगाओ, क्या हाल है? उन्होंने आकर ख़बर दी कि अल्लाह का भेजा हुआ लश्कर दुश्मनों को तलपट किए दे रहा है। आग जलाना मुश्किल है। पतीलियाँ चूल्हों पर नहीं रुकतीं। सारी फ़ौज पर अंधेरा छाया हुआ है।

ऐसे में अबू-सुफ़ियान ने अपने साथियों को जमा किया। उनसे कहा, "पहले यह देख लो कि आसपास कोई ग़ैर-आदमी तो नहीं है।" अंधेरा था ही, हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) ने अपने बग़लवाले आदमी का हाथ दबाया, पूछा, "तुम कौन हो?" उसने नाम बताया, वे चुप रहे। अबू-सुफ़ियान ने कहा, "दोस्तो! इस लड़ाई ने तो हमें तबाह कर दिया। हम यहाँ डेरा डालने थोड़े आए हैं। आदमी और जानवर सब ही पर मुसीबत आई हुई है। यहूदी ग़द्दार निकले। फिर यह आँधी, आग जलाना मुश्किल, खाना पकाना कठिन। ख़ेमे हैं कि उखड़े जा रहे हैं। मैं तो यह कहूँगा कि यारो यहाँ से चल ही दें तो अच्छा है। लो मैं तो चला। यह कहते ही उसने अपने ऊँट पर दो-तीन कोड़े रसीद किए। वह रस्सी तुड़ाकर भाग निकला। सरदार के बाद अब कौन टिकता!

ग़तफ़ान के क़बीलेवालों को क़ुरैश का हाल मालूम हुआ तो वे भी अपना सामान समेटकर चल दिए। जो बच रहा उसपर बाद में मुसलमानों ने क़ब्ज़ा कर लिया। अब मैदान में सिर्फ़ यहूदी रह गए। वे डींगें बहुत मारते थे, लेकिन क़िले से बाहर न आए। उनकी लड़ाई चोरी-छिपे और धोखा देकर नुक़सान पहुँचाना थी। दूसरों को मुसलमानों के ख़िलाफ़ उभार देते और .ख़ुद सामने आकर लड़ने की हिम्मत न करते।

काफ़ी समय के सख़्त और लगातार घेराव के बाद मुसलमानों ने कमर से हथियार खोले और अपनी आबादी में लौट आए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अब क़ुरैशवाले तुम्हारे मुक़ाबले में आने की हिम्मत न करेंगे।" बाद के हालात ने भी यही साबित किया। यूँ तो छोटी-बड़ी झड़पें चलती रहीं। लेकिन इस लड़ाई के बाद अरब के अन्दरूनी हिस्से में मुसलमानों का सामना करने की हिम्मत किसी में न रही। क़ुरैशवालों की हिम्मत तो बद्र की लड़ाई के बाद ही टूट चुकी थी। बाक़ी दो-एक क़बीले जिनको क़ुरैश ही की तरह अपनी बहादुरी और ताक़त का घमंड था, वे भी मुसलमानों के मुक़ाबले में आए तो इस तरह नहीं कि किसी मामूली गरोह से उनको टक्कर लेना है, बड़ी तैयारी के साथ आए और आख़िर में हार गए। मुसलमान पहली बार बद्र के मैदान में उतरे, तब ही लोगों को मालूम हो गया था कि इस दुनिया के ख़ालिक़ और मालिक का हुक्म बजा लाने के लिए जान देनेवालों की जमाअत की आन-बान और तेवर कुछ और ही होते हैं। .ख़ुदा पर यक़ीन सबसे बड़ी ताक़त है। अब यह हाल था कि दुश्मन सिमट-सिमटकर आते थे, मगर उनका दिल परेशान और दिमाग़ हैरान था। उनकी समझ में न आता था कि आज़माइशें तो मुसलमानों के लिए भी हैं, शहीद उनमें से भी होते हैं, मगर उनके यहाँ बिखराव नहीं। अपने सरदार के हुक्म पर जान देना उनके लिए मामूली बात है। बाहर लड़ाई की हलचल और अन्दर ख़यालात की कशमकश ने उनके सारे मंसूबे ख़ाक में मिला दिए।

वादा-ख़िलाफ़ी की सज़ा

ख़न्दक़ की लड़ाई में बनू-क़ुरैज़ा ख़ानदान के यहूदियों ने ठीक लड़ाई के वक़्त पर धोखा दिया। वादे के ख़िलाफ़ मदीना पर हमला करनेवालों के साथ

हो गए, वे पड़ोस में रहते थे इसलिए उनसे हर वक़्त ख़तरा रहता था। इसलिए उसी दिन अस्र की नमाज़ के वक़्त आप (सल्ल०) ने हज़रत बिलाल (रज़ि०) को हुक्म दिया, "जाओ बस्ती में पुकार आओ, अल्लाह और उसके रसूल का जो माननेवाला हो, उसपर लाज़िम है कि अस्र की नमाज़ बनू-क़ुरैज़ा की आबादी में पढ़े।" अब क्या था, लोग मस्जिदे-नबवी में इकट्ठा होने के बजाय उसी तरफ़ चल दिए। एक ताँता बँध गया। जिसे देखो यहूदियों की तरफ़ बढ़ा चला जा रहा है। कोई तीन हज़ार आदमी और छत्तीस घोड़े, झण्डा हज़रत अली (रज़ि०) के हाथ में था।

किसी ने ज़ुबान पर मुहर लगा दी

यहूदी क़िले में रहा करते थे। हज़रत अली (रज़ि०) ने वहाँ पहुँचकर क़िले की दीवार की जड़ में झण्डा गाड़ दिया। कुछ मुहाजिर और अनसार भी साथ थे। यहूदियों ने मुसलमानों को देखा, बाहर निकलने की तो हिम्मत न हुई। अन्दर ही से प्यारे रसूल (सल्ल०) की शान में बेहूदा बातें कहनी शुरू कर दीं। मुसलमानों ने सुना तो उनको बहुत ग़ुस्सा आया। हज़रत अली (रज़ि०) वहाँ से लौट पड़े। रास्ते में प्यारे नबी (सल्ल०) से मुलाक़ात हो गई। बोले, "आप उधर तशरीफ़ न ले जाएँ।" आप (सल्ल०) मुस्कराए, फिर फ़रमाया, "क्या बात है? उन्होंने मुझको बुरा-भला कहा होगा। तुम फ़िक्र न करो, मैं चलता हूँ। मेरे सामने उनको गुस्ताख़ी करने की हिम्मत न होगी।" सचमुच आप (सल्ल०) के सामने जैसे किसी ने उनकी ज़ुबान पर मुहर लगा दी, वे कुछ न बोले।

मुसलमानों की फ़ौज क़िलों के चारों तरफ़ घेरा डाले पड़ी रही

कोई पच्चीस दिन तक मुसलमानों की फ़ौज उनके क़िले के गिर्द घेरा डाले पड़ी रही। आख़िरकार यहूदियों के हौसले पस्त हो गए। उनके दिलों पर ख़ौफ़ छा गया। पहले तो उन्होंने एक जान-तोड़ कोशिश करने की सोची कि अपने बाल-बच्चों और औरतों को ख़ुद क़त्ल कर दें, फिर क़िलों से निकलकर मुसलमानों पर हमला करें और लड़कर मर जाएँ, मगर यह उनकी चाल ही थी। मासूम बच्चों और बेगुनाह औरतों को क़त्ल कर देना अच्छी बात तो न

थी। हक़ीक़त में उनमें बहादुरी के साथ जंग करने का हौसला न था। वे अपनी ग़लती मान लेने के बजाय इस क़िस्म की पागलपन की बातों में अपना वक़्त ख़राब कर रहे थे। सलाह-मशवरे करते-करते वे ख़ुद आपस ही में उलझ गए। फिर एक दिन आप (सल्ल०) के पास कहला भेजा कि हमारे हक़ में आपका जो फ़ैसला हो उसपर हम राज़ी हैं। यह झगड़ा किसी तरह ख़त्म होना चाहिए। हम ज़्यादा दिनों तक इस हालत में नहीं रह सकते।

तुम्हारा फ़ैसला वह है जो इस मामले में अल्लाह और उसके रसूल का फ़ैसला है

बनू-क़ुरैज़ा के यहूदियों और औस क़बीले के अनसारियों में बड़ा मेल रह चुका था। यहूद ने हज़रत साद-बिन-मुआज़ को जो औस के सरदार थे, इस मामले का फ़ैसला सुपुर्द किया। वे ख़न्दक़ की लड़ाई में ज़ख़्मी हो गए थे। मरहम पट्टी और इलाज हो रहा था। किसी तरह सवारी पर आप (सल्ल०) की ख़िदमत में लाए गए। आप (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया, "यहूदियों ने अपना मामला तुम्हारे हवाले किया है, तुम्हें इस मामले में अपनी राय देना है।" यहूदियों ने वादा-ख़िलाफ़ी की थी, तौरात में वादा-ख़िलाफ़ी की जो सज़ा मुक़र्रर थी, हज़रत साद (रज़ि०) ने वही सज़ा उनके लिए ठीक समझी, यानी जो लड़नेवाले हों उनको क़त्ल कर दिया जाए, औरतों को क़ैद कर लिया जाए। दौलत बाँट दी जाए। बस फिर ऐसा ही किया गया।

इस घेराव के बीच सिर्फ़ एक मुसलमान शहीद हुए। उनका नाम ख़ल्लाद-बिन-सुवैद था। वह इस तरह कि उनपर एक यहूदी औरत ने ऊपर से चक्की का पाट ढकेल दिया था, इस वजह से उस औरत को भी क़त्ल कर दिया गया।

हुदैबिया का समझौता

ज़ी-क़ादा 6 हिजरी (फ़रवरी 628 ई०) में नबी (सल्ल०) काबा की ज़ियारत का इरादा करके मदीना से रवाना हुए। आप (सल्ल०) का इरादा लड़ाई का न था। मक्का छोड़े हुए 6 साल हो चुके थे। इस बीच ज़ियारत

या हज के लिए भी वहाँ जाने का आप (सल्ल॰) को मौक़ा न मिला था। आप (सल्ल॰) ने उधर जाने का इरादा किया तो बहुत-से मुहाजिर, अनसार और अरब के मुख़्तलिफ़ क़बीलों के लोग साथ हो लिए। आप (सल्ल॰) ने उमरे का एहराम भी बाँध लिया था, ताकि किसी को यह अंदेशा न रहे कि आप (सल्ल॰) जंग के इरादे से निकले हैं। क़ुरबानी के जानवर भी साथ थे, जिनकी तादाद कोई 70 रही होगी। साथियों में से कुछ मदीना में आ मिले थे। बाक़ी रास्ते में साथ होते गए। कोई चौदह सौ या सोलह सौ की जमाअत रही होगी। इन लोगों के पास हथियार नाम की कोई चीज़ न थी। सिर्फ़ तलवार थी, जो म्यान के अन्दर रखी हुई थी। अरबों में रिवाज था कि तलवार ज़रूर अपने साथ रखते थे। उसको मुसाफ़िर का हथियार कहा जाता था।

वे सफ़र करते चले जा रहे थे कि रास्ते में एक आदमी से मुलाक़ात हुई। उसने बताया कि क़ुरैशवाले आपके सफ़र की ख़बर पा चुके हैं। ख़बर पाकर वे आपकी राह रोकने के लिए निकल भी पड़े हैं। बड़ी हिम्मत और पक्के इरादे से, आख़िरी दम तक जंग करने की नीयत से बाहर आए हैं। यही वजह है कि दूध देनेवाली ऊँटनियाँ और बच्चेवाली माएँ तक पीछे नहीं छोड़ी गईं। ख़ालिद-बिन-वलीद को एक सवार दस्ते के साथ पहले ही रवाना कर दिया गया है। यह सुनकर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अफ़सोस है क़ुरैशवालों पर! आए दिन की जंग उन्हें खा गई। फिर भी उन्हें होश न आया। मुझको और बाक़ी अरब को निपट लेने देते। मैं उन्हें सीधी राह पर न लाता तो मेरी हार होती, बस उनकी मुराद पूरी हो जाती और अगर ख़ुदा मुझे कामयाबी अता फ़रमाता तो ये भी अल्लाह के दीन में दाख़िल हो जाते और फिर भी राज़ी न होते तो पूरी ताक़त से मेरा मुक़ाबला करते। क़ुरैशवाले समझते क्या हैं? ख़ुदा की क़सम! मैं इन सच्चाइयों के लिए अपनी सारी कोशिशें पूरी करके रहूँगा और मेरी जिद्दो-जुहद किसी क़ीमत पर ख़त्म न होगी, जिन सच्चाइयों को फैलाने के लिए अल्लाह ने मुझे भेजा है, या तो अल्लाह का दीन फैलकर रहेगा या फिर मेरी ज़िन्दगी का ख़ातिमा हो जाएगा।"

समझौते के लिए नुमाइन्दे आने शुरू हुए

नबी (सल्ल॰) का लड़ाई का कोई इरादा न था, इसलिए आप (सल्ल॰) ने रास्ता बदल दिया, ताकि क़ुरैश के सवार दस्ते से मुठभेड़ न हो। बेकार लड़ाई की नौबत क्यों आए। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "आज मैं लड़ाई के ख़याल से नहीं निकला हूँ। क़ुरैश के लोग आज जितनी नर्मी करने को कहेंगे करूँगा।"

थोड़ी दूर चलने के बाद आप (सल्ल॰) की ऊँटनी अपने-आप ही एक जगह पर बैठ गई। इसलिए सब साथी उसी जगह पर रुक गए। डेरे डाल दिए गए। अब क़ुरैश के नुमाइन्दे आने लगे। कोई जासूसी के लिए आया। कोई बातचीत से आप (सल्ल॰) का ख़याल मालूम करने और साथियों के अन्दाज़ से राय क़ायम करने आया। किसी को यह फ़िक्र थी कि आप (सल्ल॰) के सफ़र का मक़सद मालूम करें। किसी को क़ुरैश ने भेजा, कोई उनके इशारे पर आया। बहुत-से .ख़ुद आए, यह देखने के लिए कि मक्का से निकाले हुए लोगों के रंग-ढंग क्या हैं? नए दीन में दाख़िल होने की वजह से उनमें क्या तब्दीली हुई है?

आनेवालों में से जो भी आप (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ, आप (सल्ल॰) ने उससे एक ही बात कही। हम लड़ने नहीं आए हैं, हम तो सिर्फ़ काबा की ज़ियारत करेंगे, फिर वापस चले जाएँगे। हमारे साथ क़ुरबानी के जानवर हैं। हम कोई फ़ौजी तैयारी करके नहीं चले हैं। क़ुरैशवालों को आप (सल्ल॰) की सच्ची बातों पर यक़ीन न आया, हालाँकि उन्हीं लोगों ने आप (सल्ल॰) को दुश्मनी के बावजूद सादिक़ (सच्चा) और अमीन (अमानतदार) का ख़िताब दिया था। उनके दिल में डर बैठा हुआ था, अक़्ल काम न करती थी।

मैंने क़ैसर व किसरा का भी दरबार देखा है मगर!

उरवा-बिन-मसऊद सक़फ़ी आए। उन्होंने मुसलमानों को क़ुरैश की तैयारी से डराना चाहा। कहने लगे, "अब की बार तो वे लोग बड़ी तैयारी से निकले हैं। अपने जानवर और औरतें तक उन्होंने पीछे नहीं छोड़ीं। चीते

की तरह बिफ़रे हुए हैं। तुम्हारे साथी उनके सामने एक मिनट भी न टिक सकेंगे।'' ऐसे बिखर जाएँगे जैसे रेत के ज़र्रे। तुम्हारे साथी तुम्हारा साथ छोड़ जाएँगे। हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) को ग़ुस्सा आ गया, बोले, "हम इन मुशरिकों के आगे न ठहर सकेंगे, कैसी बातें करते हो!'' बड़ी तेज़ बातचीत हो गई। उरवा-बिन-मसऊद बोले, "तुमने मुझपर एक एहसान किया था। उसकी वजह से मेरी गर्दन झुकी हुई है। क्या जवाब दूँ!" वापस गए क़ुरैश से कहा, "मैंने बड़े-बड़े दरबार देखे हैं, क़ैसर व किसरा का दरबार भी देखा है। लेकिन मुहम्मद के साथी उनकी जितनी इज़्ज़त और अदब करते हैं, उनके साथ जो लोगों का दिली लगाव है, वह मुझे बड़े-से-बड़े दरबार में भी नज़र नहीं आता। उनके वुज़ू का पानी गिरता है तो मुँह और आँखों पर मल लेते हैं। कोई उनसे आँखें चार करके बात नहीं करता। उनके सामने होते हैं तो इज़्ज़त और अदब की वजह से निगाहें नीची रखते हैं। बात इतनी धीमी आवाज़ में करते हैं कि नए आदमी को धोखा हो कि कान में बात कर रहे हैं । उनके साथी हरगिज़ तुम्हें उन तक पहुँचने न देंगे। तुम उनकी लाशों पर से होकर ही उनके सरदार तक पहुँच सकते हो। वे हक़ीक़त में लड़ने नहीं आए हैं। मेरी राय में तुम उनकी बात मान लो। हरज ही क्या है!"

धर लिए गए

कुछ क़ुरैश के नौजवानों को यह सूझी कि चुपके से हमला कर दिया जाए। मुसलमान लड़ने नहीं आए थे, फिर भी क़ुरैश की बातों से उन्हें इत्मीनान नहीं था। पहले ही से होशियार थे। ये लोग घेर लिए गए। गिरफ़्तार करके आप (सल्ल॰) की ख़िदमत में लाए गए। दुनिया के सरदार (सल्ल॰) ने उन्हें माफ़ कर दिया। फ़रमाया, "आज मैं हर नर्मी बरतने का इरादा कर चुका हूँ।"

...और जिसकी ख़ुशी और रज़ामन्दी मेरा ईमान है

जब आप (सल्ल॰) ने देखा कि क़ुरैशवालों को किसी तरह इत्मीनान नहीं हुआ तो आप (सल्ल॰) ने हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि॰) को अपना नुमाइन्दा बनाकर भेजा। वे मक्का गए। मुशरिकों से कहा, "हम लोग हक़ीक़त में लड़ने

नहीं आए हैं। काबा का तवाफ़ करेंगे, फिर अपनी राह वापस चले जाएँगे। क़ुरबानी के जानवर साथ लाए हैं। जंग का इरादा होता तो ऐसे आते? यह देखो एहराम (हज और उमरा करनेवालों का एक ख़ास लिबास) बँधा है। झूठ बोलना हमारा काम नहीं, ख़ुदा से डरनेवाले झूठ नहीं बोला करते।" उनके ख़ानदानवालों ने कहा, "तुम्हारी बात दूसरी है। हालाँकि तुम बाप-दादा के दीन से फिर गए हो, फिर भी तुम 'तवाफ़' कर सकते हो। हम तुम्हारे साथ इतनी नर्मी कर सकते हैं। बाक़ी लोगों को तो वापस जाना ही होगा।" हज़रत उसमान (रज़ि॰) ने जोश में आकर कहा, "अच्छी रही, तुम मेरी ख़ुशी चाहते हो और जिसकी रज़ामन्दी और ख़ुशी मेरा ईमान है, उनके बग़ैर मैं अकेले कैसे तवाफ़ कर लूँ! अक़्ल से काम लो।" वे बोले, "अच्छा तो फिर जैसी तुम्हारी मर्ज़ी, मगर यह भी समझ लो कि अब तुम आज़ाद नहीं हो। इस वक़्त से हमारे क़ैदी हो। वापस नहीं जा सकते।"

बैअते-रिज़वान

हज़रत उसमान (रज़ि॰) वहाँ क़ैद हो गए और मुसलमानों में यह ख़बर फैल गई कि वे शहीद कर दिए गए। आप (सल्ल॰) ने लोगों को एक पेड़ के नीचे जमा किया। फिर उनसे जाँनिसारी का अह्द लिया। इस ख़बर पर आप (सल्ल॰) को यक़ीन न था, अगर ऐसा होता तो आप (सल्ल॰) अह्द लेते वक़्त हज़रत उसमान (रज़ि॰) की तरफ़ से भी अह्द न करते। आप (सल्ल॰) चाहते थे कि ख़राब हालात के लिए तैयार रहने और हिम्मत और बहादुरी दिखाने का जज़्बा बढ़े।

इस अह्द को हमारी तारीख़ में 'बैअते-रिज़वान' कहा गया है; क्योंकि अल्लाह ने यह अह्द करनेवालों से अपनी रज़ामन्दी और ख़ुशनूदी क़ुरआन मजीद में ज़ाहिर की है। इसमें 1400 आदमी शामिल थे। वह पेड़ जिसके नीचे आप (सल्ल॰) ने यह अह्द लिया, हज़रत उमर (रज़ि॰) की ख़िलाफ़त के ज़माने तक मौजूद था। लोग उसका तवाफ़ करने लगे तो हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उसको कटवा दिया। इसलिए कि इतने अच्छे वाक़िए की यादगार कहीं शिर्क का सबब न बन जाए। शिर्क को अल्लाह ने बड़ा भारी ज़ुल्म कहा है।

मक्कावालों को इस अह्द की ख़बर मिली। बहुत डरे, सहमे, इनमें जो ज़रा समझदार थे वे बोले, "भलाई इसी में है कि सुलह कर लो। किसी को फिर भेजो। अब की साल वापस चले जाएँ। अगले साल आएँ। हमको एतिराज़ न होगा। हमारी बात रह जाए, अरबवाले हमको ताना न दें। इतना ही हमारा मक़सद है।" सुहैल-बिन-अम्र को नुमाइन्दा चुना गया। वह आप (सल्ल०) से बात करने चला। उसको आते देखा तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अब क़ुरैशवाले हक़ीक़त में सुलह चाहते हैं। मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि आज मेरी तरफ़ से उनके लिए हर तरह की रिआयत है।"

समझौता हो गया

समझौता हो गया। शर्तें ये थीं—

1. इस साल मुसलमान बग़ैर काबा की ज़ियारत किए वापस जाएँ। अगले साल आएँ। सिवाय तलवार के जो म्यान में रहेगी, कोई हथियार साथ न लाएँ। (तलवार कम-से-कम हथियार था, जो आमतौर पर मामूली सफ़र में भी हर आदमी के साथ रहता था।) क़ुरैश पूरे तौर पर मक्का को ख़ाली कर दें, तब मुसलमान शहर में दाख़िल हों। ज़ियारत के लिए तीन दिन से ज़्यादा ठहरने का उनको हक़ न होगा।
2. दस साल तक आपस में कोई जंग न होगी। रास्ते महफ़ूज़ रहेंगे। चोरी और डकैती भी मुआहदे की ख़िलाफ़वर्ज़ी समझी जाएगी।
3. क़ुरैश का कोई आदमी अपने रिश्तेदारों की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ आपके पास चला आएगा तो उसको वापस कर देंगे और कोई मुसलमान क़ुरैश में चला गया तो वे उसको वापस न करेंगे।
4. अरब के दूसरे क़बीलों में से हर एक आज़ाद होगा कि मुसलमानों और क़ुरैश में से जिससे चाहे मिल जाए। समझौते के इस हिस्से के मुताबिक़ ख़ुज़ाआ का क़बीला मुसलमानों से मिल गया और बक्र का क़बीला क़ुरैशवालों के साथ मिल गया।

हम समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करते

अभी समझौता लिखा जा रहा था कि हज़रत अबू-जन्दल (रज़ि॰) मुसलमानों के सामने आ खड़े हुए। हाथ हथकड़ियों से जकड़े हुए, पाँव में बेड़ियाँ पड़ी हुईं। ये सुहैल-बिन-अम्र के बेटे थे। इस्लाम में दाख़िल हो गए थे और अपने दीन की वजह से ख़ानदानवालों के ज़ुल्म व सितम का शिकार बने हुए थे। मालूम नहीं कैसे छूट निकले और वहाँ पहुँच गए। सुहैल फ़ौरन उठ खड़ा हुआ और बोला, "मुहम्मद! समझौता लिखा जा चुका, अब आप उनको रोक नहीं सकते। उन्हें वापस करना होगा।" इतनी देर में अबू-जन्दल (रज़ि॰) सामने आ खड़े हुए। वे कह रहे थे कि भाइयो! क्या कहते हो, मैं वापस जाऊँ और ये मुशरिक मेरे दीन की वजह से मुझे तकलीफ़ें पहुँचाते रहें?" आप (सल्ल॰) ने उनकी बात का कोई जवाब न दिया। सुहैल की बात का जवाब देते हुए फ़रमाया, "हाँ, समझौता हो चुका। हम उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करेंगे।" अबू-जन्दल (रज़ि॰) की वापसी मुसलमानों को बहुत खली। वे तड़प उठे। ख़ून के घूँट पीकर रह गए। समझौता हो चुका था। अल्लाह और उसके रसूल की यही मर्ज़ी थी।

खुली हुई जीत

इस सुलूह को क़ुरआन मजीद में खुली हुई जीत कहा गया है। वैसे देखने में तो मालूम पड़ता है कि आप (सल्ल॰) ने बहुत दबकर सुलूह की थी। सुलूह से पहले भी फ़रमा चुके थे कि आज क़ुरैश के साथ नर्मी बरती जाएगी, लेकिन हक़ीक़त में–

1. यह सुलूहनामा अपने अंजाम और असर के लिहाज़ से हार नहीं, बल्कि खुली हुई जीत थी। दोनों तरफ़ के लोगों को एक-दूसरे की तरफ़ से पूरा इत्मीनान हो गया, इस तरह दीन फैलाने के लिए रास्ता साफ़ हुआ।

2. पूरे इत्मीनान के साथ लोगों से मिलने और अपनी बात कहने की राह निकली। पहले हमेशा लड़ाई का डर लगा रहता था कि अरब के मुशरिक अपनी तमाम ताक़त से दीन फैलानेवालों को हमेशा के लिए ख़त्म न कर दें। फूँकों से तो ख़ैर यह चिराग़ क्या बुझता और कब बुझा? मगर बेइत्मीनानी

तो क़ुदरती बात थी, फिर दूसरों के दिल व दिमाग़ भी तो इन हँगामों की वजह से अच्छी बातें समझने के क़ाबिल न हो पाते थे। ठंडे दिल से इस्लाम को समझने, सोचने और मुसलमानों को परखने की आसानी उनको भी न थी। इस सुलहनामे के बाद लोग आपस में मिलने-जुलने लगे। जिन लोगों ने अब तक इस्लाम क़बूल न किया था, उनके लिए यह आसानी पैदा हो गई कि इस फ़र्क़ को समझें जो इस्लाम क़बूल करने के बाद इनसान की ज़िन्दगी में हो जाता है। मुसलमान अब तक मुशरिकों से लड़ते ही नहीं रहे थे, उन्होंने और भी बहुत-से काम किए थे। उनकी ज़िन्दगी और उनका रख-रखाव इतने दिनों में बहुत कुछ बदल गया था। लड़ाई के वक़्त भी इसका कुछ अन्दाज़ा दूसरे को होता था, उनके क़ैदी छूटते और अपने घरों को वापस होते तो अपने तजरिबे बयान करते। सफ़र में रास्ते से गुज़रते तो लोग उनको देखते, एक-दो आदमी आप (सल्ल॰) के पास आ निकलते तो उसको भी एक झलक इस नई ज़िन्दगी की नज़र आ जाती। यह सब कुछ था, मगर लड़ाई और बेइत्मीनानी के माहौल में अच्छाइयाँ कम ही दिखाई पड़ती हैं और अक़्ल उस दिल के साथ चलती है जिसमें बदगुमानियों का अंधेरा छाया रहता है।

3. अब लोगों को पूरा मौक़ा था कि मुसलमानों को क़रीब से पूरे इत्मीनान के साथ देखें और इन सच्चाइयों को अच्छी तरह परखें जिन्हें फैलाने के लिए अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को इस दुनिया में भेजा। उन्होंने देखा और परखा और भारी तादाद में अल्लाह का दीन क़बूल करते चले गए। हुदैबिया में आप (सल्ल॰) के साथ 1400 जाँनिसार थे। मक्का की फ़त्ह के वक़्त यह तादाद दस हज़ार (10,000) पहुँच गई।

4. इस मौक़े से फ़ायदा उठाकर आप (सल्ल॰) ने वक़्त की बड़ी-बड़ी हुकूमतों, बादशाहों और क़बीलों के सरदारों को ख़त लिखे। अपने नुमाइन्दे भेजे, इन ख़तों में इस्लामी उसूलों का एक हल्का-सा नक़्शा पेश किया गया और उनको नर्मी और इज़्ज़त के साथ इस्लाम की दावत दी गई थी। समझौते ही का नतीजा था कि आप (सल्ल॰) के नुमाइन्दों को रास्ते में कोई न टोकता। सुलह की मुद्दत में तक़रीबन पूरा अरब इस्लाम में दाख़िल हो गया और अरब के बाहर भी मुख़्तलिफ़ क़ौमों और देशों तक यह आवाज़ पहुँच

गई। एक पुरअम्न और मुनज़्ज़म जिद्दो-जुहद के लिए ऐसी आसानी और इस पैमाने की कामयाबी को हार कब कहा जा सकता है! यह तो खुली हुई जीत ही थी।

5. इस मुआहदे की एक अहमियत यह भी है कि इस्लाम को एक आज़ाद, मुस्तक़िल और फ़ैसलाकुन ताक़त मान लिया गया, जिसका दर्जा क़ुरैश से, जो अरब की सरदारी के दावेदार थे, किसी तरह कम न था।

कसौटी

समझौते के ये फ़ायदे पहली निगाह में सामने न आए। इसलिए इनसानी कमज़ोरी की वजह से कुछ मुसलमानों को बहुत परेशानी हुई, मगर इन लोगों के लिए सही और ग़लत की कसौटी, अल्लाह तआला और उसके रसूल (सल्ल॰) की हिदायत थी, इसलिए उनका दिल इस समझौते पर राज़ी हो गया। फिर जब इसकी अच्छाइयाँ सामने आईं तो उन्होंने अल्लाह की बड़ाई बयान की और उनसे जो ग़लतियाँ हुई थीं उनकी माफ़ी चाही।

अभी एक उलझन बाक़ी थी

इस समझौते के बाद क़ुरैश और उनके साथी क़बीलों की तरफ़ से इत्मीनान हो गया, लेकिन अभी एक परेशानी बाक़ी थी। ये थे ख़ैबर के यहूदी जो हमेशा इस ताक में लगे रहते कि कोई मौक़ा मिले और मुसलमानों के ख़िलाफ़ आग लगा दें। इधर से इत्मीनान हो जाने के बाद आप (सल्ल॰) ने उधर का रुख़ किया और मुहर्रम 7 हिजरी (628 ई॰) में आप (सल्ल॰) इस्लामी फ़ौज के साथ एक सुबह वहाँ जा पहुँचे।

ख़ैबर की फ़तह

ख़ैबर मदीना से कोई 96 मील के फ़ासले पर है। यहाँ की सारी आबादी यहूदी थी। ये लोग एक जगह इकट्ठा होकर न रहते थे, बल्कि आसपास की वादियों में बिखरे हुए थे। उनके क़िले खजूर के बाग़ों और गेहूँ के खेतों के बीच थोड़े-थोड़े फ़ासले पर बने हुए थे और यही आबादी अब यहूदियों की साज़िश का अड्डा थी। यहीं से फ़ितने सिर उठाते थे। इस्लाम के ख़िलाफ़

साज़िशों के इस मरकज़ को ख़त्म करने के लिए 628 ई॰ में आप (सल्ल॰) को वहाँ का सफ़र करना पड़ा।

चुप होकर बैठ रहे

क़रीब ही ग़तफ़ान का क़बीला रहता था। इन लोगों से यहूदियों के ताल्लुक़ात थे। ख़तरा था कि यहूदियों से किसी उलझाव की सूरत में ये लोग उनको मदद न पहुँचाएँ। इसलिए आप (सल्ल॰) ने फ़ौज को हुक्म दिया कि वह ऐसी जगह ठहरे जो इस क़बीले और यहूदियों की बस्ती के बीच में हो। यहूदियों के घिर जाने की ख़बर मिली तो इन लोगों ने मदद की सोची, मगर जब यह देखा कि हम बाहर निकले तो हमारे बच्चे दुश्मनों के घेरे में आ जाएँगे तो चुप होकर बैठ रहे।

एक-एक करके सारे क़िले जीत लिए गए

6 दिनों तक इन क़िलों का घेराव जारी रहा। यहूदी मैदान में निकलकर न लड़ते थे। एक-दो आदमी निकलकर बाहर आते, चोरी-छिपे हमले करते और भागकर क़िलों में घुस जाते, मगर कब तक! एक-एक करके सारे क़िले जीत लिए गए। यहूदियों ने हार मान ली। इस लड़ाई में कोई 93 यहूदी मारे गए, 15 मुसलमान शहीद हुए, बहुत-सा माले-ग़नीमत हाथ आया। सोने-चाँदी और अनाज के अलावा भारी तादाद में मुख़्तलिफ़ क़िस्म के हथियार, कवच, तलवार और भाले थे। तौरात के कुछ पन्ने भी हाथ लगे, उन्हें आप (सल्ल॰) ने यहूदियों को वापस कर दिया।

इस बात से मुतास्सिर होकर एक यूरोपियन तारीख़दाँ (इतिहासकार) ने लिखा है—

“यह वाक़िआ इस बात का सुबूत है कि आप (सल्ल॰) के दिल में इन सहीफ़ों की कितनी क़द्र थी। यहूदी इस एहसान को कभी भी भूल नहीं सकते। रूमियों का यरूशलम पर क़ब्ज़ा हुआ तो उन्होंने ‘मुक़द्दस किताब’ की बेइज़्ज़ती करने में कोई कसर न उठा रखी। जलाया भी और पैरों तले रौंदा भी, फिर ईसाइयों ने अन्दलुस (स्पेन) में यहूदियों के साथ लड़ाई के

दौरान में इन पाक सहीफ़ों को निहायत बेइज़्ज़ती के साथ जलाया। पैग़म्बरे-इस्लाम और इन सब लोगों के बरताव में कितना बड़ा फ़र्क़ है।"

इसी मौक़े पर नहीं, इन सहीफ़ों के मामले में इससे पहले भी आप (सल्ल॰) का यही तरीक़ा रहा और दूसरे मज़हबों की किताबों के बारे में हमेशा मुसलमानों के लिए यही माना हुआ और सही तरीक़ा रहेगा।

ख़ैबर की पूरी जीत के बाद नबी (सल्ल॰) ने यहूदियों को इसकी इजाज़त दे दी कि वे अपनी बस्ती में रहें, खेती-बाड़ी और बाग़ों की देखभाल ख़ुद करें। लेकिन पैदावार का आधा उन्हें बैतुल-माल (इस्लामी ख़ज़ाना) में जमा करना होगा।

यह घेराव लगभग एक महीने जारी रहा। इससे वापस होते हुए फ़िदक के यहूदियों से भी इन्हीं शर्तों पर समझौता हो गया।

उनको अपनी दौलत और ताक़त पर घमण्ड था

आप (सल्ल॰) ने हमेशा पिछली उम्मत के लोगों की तरफ़ मेल-मुहब्बत का हाथ बढ़ाया। उनसे सुलह-सफ़ाई रखने की कोशिश की। मदीना पहुँचे तो यहूदियों से समझौता कर लिया। लेकिन आप (सल्ल॰) की इन बातों को वे मुसलमानों की कमज़ोरी समझते रहे। जब भी मौक़ा मिला खुल्लम-खुल्ला या चुपके-चुपके उन्होंने गड़बड़ पैदा करने में अपने बस से कोई कमी नहीं की। उनको अपनी दौलत और ताक़त पर बड़ा घमण्ड था। एक बार उनमें से किसी ने यहाँ तक कह दिया, "हम लोग क़ुरैशवाले नहीं हैं। वे लड़ना क्या जानें! उनके मुक़ाबले में आप जीत गए। हमारा कभी सामना हुआ तो मालूम होगा कि बहादुर ऐसे होते हैं।"

मदीना के चौधरी

नबी (सल्ल॰) ने मदीना के दोनों क़बीलों औस और ख़ज़रज के बीच भाईचारा और मेल करा दिया। यह भी उनको बहुत खलता था। इन दोनों ख़ानदानों की सालों पुरानी लड़ाई की वजह से यहूदी बहुत ख़ुश थे और ख़ुश क्यों न होते, दोनों को लड़ाते रहते, ख़ुद चौधरी बने हुए थे। उनकी सूझ-बूझ

का रंग जमा हुआ था। महाजनी कारोबार ख़ूब चल रहा था। औस और ख़ज़रज के मेल-जोल ने, सूदी कारोबार को बुरा क़रार दिए जाने और अपने ग़रीब साथियों के काम आने की तालीम ने इस जाल के टुकड़े कर दिए, जिसको यहूदियों ने मदीना की पूरी आबादी पर डाल रखा था और यह काम ऐसी नेकनीयती और सच्चाई से हुआ था कि वे घुटकर रहते, उन्हें अपनी चौधराहट का मौक़ा न मिलता।

उनकी ताक़त पारा-पारा हो गई

आप (सल्ल०) ने सोचा था इनके पास भी अल्लाह की भेजी हुई किताब है, हमारे पड़ोसी हैं। बहुत-सी बातें हमारे और इनके बीच एक जैसी हैं। कम-से-कम उनमें तो हमारा साथ देंगे। हक़ीक़त में दीन तो एक ही है, यही इस्लाम। उसकी सच्चाई इन्हें भा गई तो ये भी इसमें दाख़िल हो जाएँगे। हज़रत मूसा (अलैहि०) ने जो पैग़ाम इन तक पहुँचाया था, जो किताब इनकी हिदायत के लिए भेजी गई थी, इस पैग़ाम और इस किताब को आख़िरी और मुकम्मल शक्ल में पाकर ये लोग अच्छे बन जाएँगे। अच्छों में मिल जाएँगे। इनसानी बिरादरी में कुछ और भले आदमी बढ़ जाएँगे, मगर इन्हें बुरा रहना था, न सुधरे। मुआहदे की ख़िलाफ़वर्ज़ी करते रहे। छिप-छिपकर फ़ितने फैलाते रहे और होता क्या! अपने अंजाम को पहुँचे। वतन से निकाले गए, क़त्ल हुए। इनकी ताक़त टुकड़े-टुकड़े होकर रह गई। किसी गिनती में न रहे। तुमने सुना होगा, चौदह सौ साल बाद अब फिर उभरे हैं। इन्होंने फ़लस्तीन में अपनी हुकूमत क़ायम कर ली और मुसलमान कमज़ोर हो गए। उनमें अख़लाक़, सच्चाई, अल्लाह पर भरोसा, .ख़ुद नेक बनने और दूसरों को नेक बनाने का जज़बा न रहा। अब भी कुछ लोग हैं जो इसी सबको सच और ठीक समझते हैं, जो अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) के नज़दीक सच और ठीक है, जो अब भी दीन फैलाने की धुन में हैं। ऐसे लोग थोड़े ही होंगे, मगर हर जगह हैं। अल्लाह चाहे तो वे .ख़ुद सुधर जाएँ और दूसरों को सुधार लें। यहूदियों को भी, सारे इनसानों को भी, चाहे वे किसी मुल्क, किसी क़ौम और किसी ख़ानदान के हों। इसी में दुनिया की भलाई है। यही काम हमारे-तुम्हारे करने का है।

ख़ैबर फ़तूह होने की ख़ुशी मनाऊँ या तुम्हारे आने की

अभी तक आप (सल्ल॰) के चचेरे भाई जाफ़र-बिन-अबू-तालिब हबशा ही में थे। उनके साथ कुछ और मुसलमान भी थे। कोई पन्द्रह-सोलह आदमी रहे होंगे। उसी ज़माने में वे लोग वापस आए। हबशा के बादशाह नजाशी ने उनको बड़े इन्तिज़ाम और आराम से भेजा। भाई से मिलकर आप (सल्ल॰) बहुत ख़ुश हुए। उनके माथे को चूमा और खड़े हो गए। फिर फ़रमाया, "ख़ैबर के फ़तूह होने की ख़ुशी मनाऊँ, या इतने दिनों से बिछड़े हुए भाई के आने की। तुम सीरत और सूरत दोनों में मुझसे बहुत मिलते-जुलते हो।" यह मामूली तारीफ़ न थी। हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) जितना ख़ुश होते कम था।

मुअता की लड़ाई

नबी (सल्ल॰) ने मुख़्तलिफ़ मुल्कों और क़ौमों के पास ख़त और नुमाइन्दे भेजे थे। एक आदमी बसरा के हाकिम के पास भी भेजा था। उसको रास्ते में एक ईसाई अरब ने शहीद कर दिया। नुमाइन्दे को मारना उस ज़माने में भी जुर्म था। आप (सल्ल॰) को ख़बर मिली तो बहुत दुख हुआ। आप (सल्ल॰) ने हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) की निगरानी में तीन हज़ार मुजाहिदों का लश्कर रवाना किया। ये ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) वही थे जिन्हें बचपन में आप (सल्ल॰) ने ख़रीदा था। फिर अपना बेटा बना लिया था। उनके बाप-चचा लेने आए तो ये उनके साथ जाने पर राज़ी न हुए थे। जाते वक़्त आप (सल्ल॰) ने उनको कुछ हिदायतें दीं। हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) की शहादत के बाद अपने चचेरे भाई हज़रत जाफ़र-बिन-अबू-तालिब (रज़ि॰) को मुक़र्रर किया। उनके बाद हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि॰) को और फिर जिसको मुसलमान वक़्ती तौर पर चुन लें।

औरतों, बच्चों और बूढ़ों को क़त्ल न करना

वहाँ से रवाना होते वक़्त नबी (सल्ल॰) ने पूरे लश्कर से फ़रमाया—

"ख़ुदा से डरते रहना। साथियों के साथ मुहब्बत और हमदर्दी से पेश आना। अल्लाह की राह में अल्लाह ही के लिए उन लोगों से जिहाद करना जो उसकी हस्ती का इनकार करते हैं, न बदअह्दी करना, न ज़ुल्म व

ज़्यादती। बच्चों, औरतों और बूढ़ों पर हाथ न उठाना। उन लोगों को क़त्ल न करना जो तुमसे लड़ने के बजाय अपनी इबादतगाहों में बैठे हों। पेड़ों को नुक़सान न पहुँचाना। घरों को न ढाना।"

यह फ़ौज जुमादल-ऊला 8 हिजरी में मदीना से रवाना हुई।

रूमी हुकूमत

अरब से मिली हुई रूमी हुकूमत थी। वह उस ज़माने में दुनिया की सबसे बड़ी हुकूमत गिनी जाती थी। उसका असर अरब के सरहदी इलाक़ों पर भी था। यही वजह थी कि सरहद के क़रीब आबाद बहुत-से अरब क़बीले ईसाई हो गए थे और उसके मातहत हाकिम की हैसियत से हुकूमत कर रहे थे।

शहादत मुसलमान की ज़िन्दगी का अस्ल मक़सद है

रूमियों को मुसलमानों की रवानगी की ख़बर मिली। उन्होंने एक भारी फ़ौज इकट्ठा की जो हर तरह के हथियारों से लैस थी और तादाद के एतिबार से मुलसमानों की फ़ौज का इससे कोई मुक़ाबला न था। एक रात हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) एक मक़ाम पर अपनी फ़ौज के साथ ठहरे हुए थे। रूमियों के आगे बढ़ने की ख़बरें बराबर मिल रही थीं। उन्होंने मशवरा किया कि इन हालात की ख़बर मदीना भेज दी जाए। या आप (सल्ल॰) कुछ और फ़ौज मदद के लिए भेजेंगे, या कोई और हुक्म देंगे। उसपर अमल किया जाएगा। हुक्म तो बहरहाल पूरा करना ही है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि॰) ने हिम्मत दिलाने के लिए कहा, "आपको जो इस वक़्त ख़ौफ़ है वह तो वही है जिसके लिए हम मदीना से निकले थे, यानी शहादत। हम तादाद या क़ुव्वत के भरोसे दुश्मनों से थोड़े ही लड़ते हैं। हम तो उस दीन के सहारे मैदाने-जंग में उतरते हैं जिसे अल्लाह पाक ने हमें अता फ़रमाया है। या तो अल्लाह इस दीन को फैलाकर रहेगा या फिर हम शहीद होंगे और शहादत भी हमारे लिए फ़तूह से कम पसन्दीदा न होगी।"

शहादत है मतलूब व मक़सूदे-मोमिन।
न माले-ग़नीमत न किश्वर कुशाई।।

दूसरे दिन फ़ौज की लड़ाई

दूसरे दिन फ़ौज आगे बढ़ी, रूमियों से मुक़ाबला हुआ, मुसलमानों ने बड़ी बेख़ौफ़ी, बहादुरी, हिम्मत और मर्दानगी से लड़ाई लड़ी, मगर वे रूमी फ़ौज के सामने मुट्ठी-भर आदमी थे। एक बहुत बड़े तूफ़ानी समुद्र में कुछ इनसान पहाड़ जैसी लहरों से उलझे हुए थे। हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) शहीद हुए। हज़रत जाफ़र-बिन-अबू-तालिब (रज़ि॰) ने हक़ के रास्ते में शहादत पाई। उनके जिस्म पर तक़रीबन नव्वे घाव थे और सब सामने की तरफ़, पीछे की तरफ़ एक भी न था। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि॰) भी अल्लाह के दरबार में कामयाब होकर पहुँचे।

हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰)

हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) ने बढ़कर झंडा हाथ में लिया। उन्हें क़ुदरती तौर पर फ़ौजों की कमान करने का बड़ा सलीक़ा था। उहुद की लड़ाई में उन्हीं की होशियारी से मुशरिकों के उखड़े हुए पाँव फिर से जमे थे। अब वे भी इस्लाम में दाख़िल हो गए थे। उन्होंने यहाँ भी बड़ी सूझ-बूझ दिखाई। एक माहिर फ़ौजी सरदार की तरह उनको दुश्मन की ताक़त का सही अन्दाज़ा था। अपनी फ़ौज को रूमियों के घेरे से साफ़ निकाल लाए। और ऐसी ख़ूबी से कि रूमी फ़ौज को उनका पीछा करने की हिम्मत न हुई। यह उनकी फ़ौजी रहनुमाई का कमाल ही था कि इतनी बड़ी फ़ौज का सामना करने में सिर्फ़ बारह मुसलमान शहीद हुए। जानी नुक़सान के लिहाज़ से यह हार, हार न थी।

अल्लाह की तलवार

आप (सल्ल॰) को इस हादसे की ख़बर मिली। लोगों को मस्जिद में इकट्ठा किया, मिम्बर पर तशरीफ़ ले गए। आँखों से आँसुओं का दरिया बह रहा था। फ़रमाया, "अपनी मुजाहिद फ़ौज का हाल सुनो। उसने बहादुरी से दुश्मनों का सामना किया। ज़ैद (रज़ि॰) शहीद हो गए। उनके लिए बख़्शिश की दुआ करो। फिर हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) आगे बढ़े फिर अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि॰) आगे बढ़े, मज़बूती के साथ लड़ते रहे और आख़िरकार अपने ख़ालिक़

के पास जा पहुँचे। उनके लिए बख़्शिश की दुआ करो। आख़िर में ख़ालिद-बिन-वलीद ने तुम्हारी फ़ौज का झंडा हाथ में लिया। वे अल्लाह की तलवार में से एक तलवार हैं। आख़िरकार वे कामयाबी के साथ लौटे।" उसी दिन से हज़रत ख़ालिद का लक़ब सैफ़ुल्लाह (अल्लाह की तलवार) पड़ गया।

असमा मुँह पर तमाँचे न मारो, बैन न करो

मस्जिद से आप (सल्ल०) हज़रत जाफ़र-बिन-अबू-तालिब (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए। उनकी बीवी असमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) से पूछा, "बच्चे कहाँ हैं? यहाँ बुलाओ।" बच्चे आकर चिमट गए। आप (सल्ल०) ने उनको गोद में लेकर प्यार करना शुरू किया। हज़रत जाफ़र (रज़ि०) की बीवी कहती हैं : मैंने देखा आप (सल्ल०) की दाढ़ी आँसुओं से तर है। मेरा माथा ठनका। मैंने पूछा, "ख़ैर तो है! क्या मैदाने-जंग से कोई बुरी ख़बर आई है?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वे सब शहीद हो गए।" यह सुनना था कि वे उठ खड़ी हुईं। रोने-पीटने लगीं। आप (सल्ल०) रोते जाते थे और नर्मी से फ़रमाते, "असमा! बैन न करो, मुँह पर तमाँचे न मारो।" फिर हाथ उठाए और फ़रमाया, "ऐ अल्लाह! शहीदों को इसका बेहतरीन बदला दे। उनके घर के लोगों को वे सारी नेकियाँ अता फ़रमा। उनको उस भलाई के साथ रख जिसके साथ तूने किसी नेक बन्दे के घरवालों को रखा हो।"

प्यारे नबी (सल्ल०) हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के यहाँ तशरीफ़ ले गए। वे ग़म से निढाल हो रही थीं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जाफ़र जैसे आदमी पर कैसे रोना न आए! उनके बच्चे सदमे से बेहाल हैं। बेटी, उनके लिए कुछ पकाकर भेज दो।"

मक्का की फ़त्ह

हुदैबिया की सुल्ह की शर्तों में एक यह भी थी कि दोनों फ़रीक़ दस साल तक एक-दूसरे के ख़िलाफ़ जंग से बाज़ रहेंगे। प्यारे नबी (सल्ल०) ने समझौते की तमाम शर्तों की पाबन्दी का पूरा लिहाज़ रखा। हज़रत अबू-जन्दल (रज़ि०) पैरों में ज़ंजीर पड़े हुए सामने आए, उन्हें वापस कर दिया गया। दूसरे साल शर्तों के मुताबिक़ आप (सल्ल०) मक्का तशरीफ़ ले गए।

वहाँ तीन दिन से ज़्यादा न ठहरे। मर्दों में से जो मुसलमान मक्का से मदीना अपने घरवालों की मरज़ी के ख़िलाफ़ आए, उनको लौटा दिया। यह वापसी उनकी मरज़ी और अपनी ख़ाहिश के ख़िलाफ़ थी, मगर वादे की पाबन्दी का इतना ख़याल था कि ज़रा भी झिझक न हुई।

समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी

समझौते की चौथी दफ़ा के मुताबिक़ बक्र का क़बीला क़ुरैश से मिलकर उनके साथ हो गया था और .ख़ुज़ाआ का क़बीला जो पहले ही मुसलमानों से हमदर्दी रखता था, उनके साथ शामिल हो गया। इन दोनों क़बीलों में पुरानी दुश्मनी थी। जितने दिन सारा अरब नए दीन के ख़िलाफ़ साज़िशों और जंगी तैयारियों में लगा रहा, यह आग दबी रही। सुलूह के ज़माने में इन चिंगारियों ने शोला बनना शुरू किया। बक्र के क़बीले को इन्तिक़ाम लेने की धुन सवार हुई। उन्होंने क़ुरैश से मदद चाही। खुल्लम-खुल्ला तो क़ुरैश की हिम्मत न हुई कि समझौते के ख़िलाफ़ बक्र की मदद करते और मुसलमानों से जंग का ख़तरा मोल लेते। अलबत्ता उन्होंने छिपकर हथियार दिए, रातों को चुपके से मुसलमानों पर हमले किए और अपने आदमियों से उनकी मदद शुरू कर दी। लड़ाई-झगड़ा ऐसी चीज़ नहीं, जिसको छिपाया जा सके। क़ुरैश की वादाख़िलाफ़ी का राज़ खुल गया। .ख़ुज़ाआ के लोग नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में फ़रियादी बनकर आए। उधर मक्कावालों को फ़िक्र हुई, राज़ खुल गया तो क्या होगा? उन्होंने अबू-सुफ़ियान को अपना नुमाइन्दा बनाकर भेजा और नए समझौते की पेशकश की। यह तो सिर्फ़ बहाना था, बल्कि यह अन्दाज़ा लेना था कि .ख़ुज़ाआ की फ़रियाद का मदीना पर क्या असर हुआ।

अच्छा तो यह आदमी मदीना से आ रहा है

रास्ते में जो नज़र आता अबू-सुफ़ियान को .ख़ुज़ाआ का नुमाइन्दा ही दिखाई देता। आख़िर एक आदमी सचमुच रास्ते में मिल ही गया। उन्होंने पूछा, “कहाँ से आ रहे हो? .ख़ुज़ाआ के क़बीले से हो न? मदीना गए होगे?” वह उन्हें पहचान गया। आएँ, बाएँ, शाएँ जवाब देता हुआ आगे बढ़ गया। अबू-सुफ़ियान को चैन कहाँ? उसने ऊँट की मेगनियों को मसलकर देखा,

खजूर की गुठली निकली। अच्छा तो ज़रूर यह आदमी मदीना से आ रहा है। उनका अन्दाज़ा सच निकला, मगर वहाँ तक तो जाना ही था, चाहे नतीजा कुछ भी हो!!

आप इस कम्बल पर बैठने के लायक़ नहीं

अबू-सुफ़ियान मदीना पहुँचे। उनकी अपनी बेटी उम्मे-हबीबा (रज़ि॰) ने इस्लाम क़बूल कर लिया था। अल्लाह के दीन के लिए उन्होंने माँ-बाप को छोड़ा। घर-बार छोड़ा। हबशा को हिजरत कर गईं, वहाँ उनके शौहर ईसाई हो गए। उनको छोड़ा। अब प्यारे नबी (सल्ल॰) की बीवियों में दाख़िल थीं। सालों के बाद बाप की शक्ल नज़र आई। जी भर आया होगा, मगर दिल में अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) की मुहब्बत घर कर चुकी थी। वहाँ अब किसी दूसरे की गुंजाइश न थी। अबू-सुफ़ियान को आते देखा तो झट वह कम्बल लपेटकर अलग रख दिया, जिसपर प्यारे नबी (सल्ल॰) तशरीफ़ फ़रमाया करते थे। उन्होंने मुस्कराकर पूछा, "बेटी! तुमने इस कम्बल को क्यों लपेटकर अलग रख दिया? मैं क़ुरैश का नामी सरदार हूँ। यह कम्बल मेरे बैठने के क़ाबिल नहीं, इसलिए या इस वजह से कि मैं इस लायक़ नहीं कि इस कम्बल पर बैठने दिया जाऊँ।" हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि॰) ने जवाब दिया, "आप मुशरिक हैं। प्यारे नबी (सल्ल॰) के कम्बल पर आपको बैठने की इजाज़त नहीं दी जा सकती।" अफ़सोस करते हुए बोले, "बेटी! तू हमें बिलकुल भूल गई।"

वे क्या करतीं, उनके नज़दीक तो ताल्लुक़ात की वही एक कसौटी थी, जिसकी बिना पर रिश्ते और नाते को परखा जा सकता है, जिसकी बिना पर नूह (अलैहि॰) का बेटा उनका अपना बेटा न रहा और मक्का के निकाले हुए मुसलमान अनसार के हक़ीक़ी भाइयों से बढ़कर हो गए।

किसी ने सिफ़ारिश की हामी न भरी

अबू-सुफ़ियान मदीना में एक मुसलमान के पास गए। एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया। बड़ी ख़ुशामदें कीं, मगर कोई इस मामले पर आप (सल्ल॰) से बातचीत करने और उनकी सिफ़ारिश करने पर राज़ी न हुआ। जब किसी ने

हामी न भरी तो मक्का लौट गए। वे सोच रहे थे, समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी बहुत महँगी पड़ेगी। देखिए उसका क्या अंजाम हो?

तैयारी शुरू हो गई

.ख़ुज़ाआ क़बीले के बीस-बाईस आदमी क़ुरैश और बक्र ने मिलकर मार डाले थे। उनकी शिकायत ही के बाद नबी (सल्ल॰) ने तैयारी शुरू कर दी थी। रास्तों पर पहरे बिठा दिए गए, दुश्मनों को मदीना के बारे में कोई ख़बर न मिलने पाए, तैयारी का पता न चले। क़ुरैशवालों के लिए यह एक पहेली थी। अन्दर-अन्दर क्या हो रहा है, मालूम न होता। आने-जानेवालों की ऐसी कड़ी निगरानी मदीना में होती थी कि क्या मजाल ज़रा-सी बात बाहर चली जाए।

मुजाहिदीन का लश्कर हरकत में

आख़िरकार 10 रमज़ान 8 हिजरी, पहली जनवरी 630 ई॰ को अस्र की नमाज़ पढ़कर आप (सल्ल॰) मदीना से रवाना हुए। चलते वक़्त आसपास के क़बीलों को ख़बर कर दी गई। दस हज़ार की फ़ौज आप (सल्ल॰) के साथ थी, इसमें एक हज़ार के क़रीब सवार थे। मक्कावालों को इस लश्कर के हरकत में आने की बिलकुल ख़बर न थी। वे अभी तक अन्धेरे में थे।

शोलों का जंगल

एक रात अबू-सुफ़ियान और उसके कुछ साथी पता लगाने के लिए निकले। उन्होंने एक तरफ़ देखा, आग के शोलों से सारा रेगिस्तान रौशन हो रहा है। वे बोले, "यह .ख़ुज़ाआ की आग है, जिसके शोले आसमान तक पहुँच रहे हैं। उनकी नीयत ख़राब है। हमसे लड़ने का इरादा है।" और क़िस्सा यह था कि मर्रुज़्ज़हरान के मक़ाम पर पहुँचकर आप (सल्ल॰) ने साथियों को हिदायत की कि हर आदमी अपने लिए अलग-अलग आग रौशन करे। इस तरह दुश्मनों पर धाक बैठ जाएगी। नतीजा ठीक निकला। अबू-सुफ़ियान और उनके साथी इन्हीं शोलों को बुलन्द होते हुए देखकर डर

गए। उन्होंने कहा, "इतना बड़ा लश्कर और बल खाते हुए शोलों का ऐसा जंगल तो मैंने कभी नहीं देखा।"

अपने दस्तूर के मुताबिक़

अपने दस्तूर के मुताबिक़ नबी (सल्ल॰) ने पूरे लश्कर को कई हिस्सों में बाँट दिया था। हर टोली का अपना झण्डा था और दस हज़ार का लश्कर सलीक़े, तरतीब और वक़ार के साथ आगे बढ़ रहा था। रात किसी तरह गुज़री। सुबह को मुजाहिदीन की यह फ़ौज मक्का की तरफ़ बढ़ी। आप (सल्ल॰) के झण्डे का रंग काला था। उसको उक़ाब कहते थे। वह हज़रत आइशा (रज़ि॰) की चादर को फाड़कर बनाया गया था।

अबू-सुफ़ियान एक टीले पर खड़े थे

अबू-सुफ़ियान एक टीले पर खड़े थे। दस हज़ार मुजाहिदीन का लश्कर उनके सामने से गुज़र रहा था। उनमें पहचानी हुई सूरतें थीं, जाने हुए लोग थे। भाई-बन्द, अज़ीज़-रिश्तेदार, दोस्त-दुश्मन सब ही थे। वे भी थे जो रेत पर लिटाए जाते थे, जिनको अल्लाह का दीन क़बूल करने के जुर्म में सज़ाएँ दी जाती थीं। वे लोग भी थे जिन्होंने मक्का के मुशरिकों के कोड़े खाए थे। वे लोग भी थे जिनको जलती हुई रेत पर घसीटा जाता था। रेत की गर्मी मिट गई, लेकिन ईमान का वक़ार चेहरों पर लिए हुए वे अब सामने से गुज़र रहे थे। वे उमर (रज़ि॰) भी थे जिनकी ताक़त पर मुशरिकों को बड़ा नाज़ था। फिर अल्लाह की वह्य के पुर-जलाल अलफ़ाज़ ने उन्हें अन्धेरे से रौशनी में खींच लिया। अबू-सुफ़ियान अब कुफ़्र के दुश्मन बने, मक्का की तरफ़ बढ़ रहे थे।

हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ि॰) गुज़रे

हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ि॰) गुज़रे। अबू-सुफ़ियान सोचने लगे। अब से बहुत दिनों पहले अपने ख़ानदान के एक मजमे में क़ुरैश के एक नौजवान ने कहा, "मैं अल्लाह का बन्दा और उसका रसूल हूँ। तुम्हारे लिए उसका पैग़ाम लाया हूँ। मूर्ति-पूजा छोड़ दो। बन्दगी के लायक़ सिर्फ़ वही है, जो इस

दुनिया का पैदा करनेवाला और मालिक है। मरने के बाद अपने तमाम छोटे-बड़े कामों का उसके सामने हिसाब देना होगा। इन सच्चाइयों पर आसमान और ज़मीन सब गवाह हैं। कौन है जो इस काम में मेरा साथ दे?"

छोटी उम्र का एक बच्चा उठा। यह उस नौजवान का भाई था। उसने कहा, "हालाँकि मेरी आँखें दुख रही हैं। मेरी टाँगें पतली हैं, मगर भाईजान, फिर भी मैं इस भले काम में आपका साथ देने को तैयार हूँ।" बूढ़े लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। क़ुरैश के एक बहुत बड़े ख़ानदान और सारे अरब की ताक़त के सामने यह नौजवान और यह कम उम्र बच्चा मानो किसी तेज़ आँधी के सामने तिनके।

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) गुज़रे

ख़यालात का सिलसिला टूट गया। ये अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) गुज़र रहे थे। ये तो वही हैं जिन्होंने काबा के सेहन में एक बार अल्लाह का नाम लिया और लोगों ने उनके ईमान की क़ीमत उनके जिस्म से वुसूल कर ली। चेहरा पहचाना न जाता था। शाम तक होश न आया और एक दिन वह भी आया कि रात के सन्नाटे में घर छोड़कर निकले और ऐसे निकले कि बरसों मक्का की वादी और पहाड़ों की सूरत न देख पाए।

और सबसे आख़िर में नबी (सल्ल०) का गुज़र हुआ

और सबसे आख़िर में गुज़रा इस भारी फ़ौज का सबसे ऊँचे मरतबेवाला कमांडर, अपने साथ अपने ग़ुलाम के बेटे को बिठाए हुए एक मामूली कजावे और पुरानी चादर पर। वह फ़ौज जिसकी तलवारों की झंकार से दुश्मनों के दिल लरज़ रहे थे, जिसके झण्डे की हर लहर मुशरिकीन की निगाहों का नूर छीन लेती थी। जिसके सरदारों के 'अमर गीतों' से सीनों के अन्दर उथल-पुथल मची हुई थी। दस हज़ार सूरमाओं की फ़ौज का कमांडर कजावे पर सिर झुकाए अपने मालिक के सामने गिड़गिड़ा रहा था, "ऐ पैदा करनेवाले! ज़िन्दगी तो हक़ीक़त में आख़िरत की ज़िन्दगी है।"

अबू-सुफ़ियान सोचने लगे। यह वही नौजवान तो है, जिसके चचा से कहा गया था कि हमसे एक ख़ूबसूरत और मोटा-ताज़ा जवान लेकर उसको

अपना बेटा बना लो और अपने भतीजे को हमें दे दो। हम उसे मार डालेंगे। एक दिन काबा में ख़ुदा के लिए सजदे में पड़ा था, किसी ने ओझ लाकर गर्दन पर डाल दी और मासूम बेटी के अलावा कोई न था जो उसकी मदद को पहुँचता। बाज़ारों और मेलों में बच्चे उसके पीछे शोर मचाते, बूढ़े उसको पागल, शायर और जादूगर कहकर पुकारते। अबू-जह्ल और अबू-लहब तो उसके ख़ून के प्यासे थे। अबू-तालिब की घाटी और उसका बायकाट, फिर ताइफ़ की गलियाँ और पथराव। उसकी लहूलुहान एड़ियाँ, चचा चल बसे, वफ़ादार बीवी इस दुनिया से कूच कर गईं। सारे सहारे टूट गए, मगर नौजवान अपनी राह चलता रहा। अपना फ़र्ज़ अदा करता रहा और एक सुबह जब दुश्मनों ने उसका घर घेर रखा था, उसने अपने वतन को भी अल्लाह के लिए छोड़ दिया। उसने मक्का की तरफ़ मुड़कर देखा और कहा, "ऐ ज़मीन पर मेरे सबसे प्यारे शहर! तेरे निवासी मुझे रहने नहीं देते।" उसकी आँखों में आँसू थे, लेकिन उसके दिल में वह पक्का इरादा भी था जो अल्लाह ने उसको अपना सच्चा नबी बनाकर उसकी फ़ितरत में रखा था। बद्र की लड़ाई में तीन सौ तेरह (313) मुजाहिदों का सरदार आज मक्का में दस हज़ार जाँनिसारों के साथ दाख़िल हो रहा था।

अबू-सुफ़ियान उस टीले पर खड़े थे। अबू-क़ुबैस की चोटियाँ सिर उठाए हैरत से तक रही थीं। दो साथी एक गुफा से निकले। उनके पीछे उनका ग़ुलाम था। उस बड़े रेगिस्तान में उनका ग़ुबार उठकर बैठ गया था। वे उफ़ुक़ के पार छिप गए और आज आठ साल के बाद, वह पुकार जिसे सफ़ा की पहाड़ी ने अब तक अपने सीने में छिपा रखा था, उससे घाटियाँ और पहाड़ गूँज रहे थे। हक़ फैलकर रहा। रौशनी ने अन्धेरे पर फ़तह पाई। हक़ और बातिल की कशमकश से हक़ विजयी होकर निकला।

हमने पहल नहीं की

आप (सल्ल॰) ने फ़ौज के सरदारों को कड़ी मनाही कर दी थी, "ख़बरदार! जो तुमसे छेड़छाड़ न करे, उसपर हाथ न उठाना।" हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) शहर के जिस हिस्से से दाख़िल हुए, वहाँ लोगों

ने तीरों की बौछार शुरू कर दी। मजबूर होकर उन्हें और उनके साथियों को जवाब देना पड़ा। अबू-सुफ़ियान बीच में पड़े तो झगड़ा ख़त्म हुआ। आप (सल्ल॰) ने एलान किया, "जो अपने दरवाज़े बन्द कर ले वह महफ़ूज़ है, जो अबू-सुफ़ियान के घर में पनाह ले-ले उसे कोई डर नहीं, जो हरम में चला जाए, उसे कोई नहीं छेड़ेगा।" नबी (सल्ल॰) को इस झड़प का हाल मिला तो आप (सल्ल॰) ने हज़रत ख़ालिद (रज़ि॰) से जवाब माँगा। उन्होंने बताया कि हमारी तरफ़ से पहल नहीं हुई। वे लोग ख़ुद ही हमला कर बैठे। हम क्या करते? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह जो करता है अच्छा ही करता है।"

सब आदम की औलाद हैं और आदम मिट्टी से बने थे

मक्का में दाख़िल होने के बाद नबी (सल्ल॰) ने उसमान-बिन-तलहा को बुलाया। उनके पास काबा की कुँजी रहती थी। उनसे कुँजी ली और अन्दर दाख़िल हुए। फिर दरवाज़े पर खड़े होकर फ़रमाया—

> "अल्लाह एक है। उसका कोई साझी नहीं। उसने अपना वादा सच कर दिखाया और अपने बन्दे की मदद की। अकेले तमाम जत्थों को हरा दिया। हर क़िस्म के घमण्ड और ख़ून और माल के दावे मेरे पाँव के नीचे हैं। ऐ क़ुरैशवालो! तुम्हारी जाहिलियत के घमण्ड और ख़ानदान की बड़ाई के गुमान को अल्लाह ने मिटा दिया। तमाम इनसान आदम की औलाद हैं और आदम मिट्टी से बने थे।"

जाओ तुम सब लोग आज़ाद हो

वे लोग जिन्होंने इस्लाम और ख़ुद नबी (सल्ल॰) की दुश्मनी में कोई कसर उठा न रखी थी, डरे हुए और सहमे हुए सामने खड़े थे। आप (सल्ल॰) ने उनकी तरफ़ देखा और फ़रमाया, "तुम्हारा क्या ख़याल है? मैं तुम्हारे साथ कैसा बरताव करूँगा?" उन्होंने जवाब दिया, "आप हमारे नेक और रहमदिल भाई और रिश्तेदार हैं।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जाओ तुम सब आज़ाद हो। तुमसे किसी तरह का बदला नहीं लिया जाएगा।"

इसके बाद आप (सल्ल॰) ने काबा की कुँजी उसमान-बिन-तलहा (रज़ि॰) को लौटा दी, जो आज तक उन्हीं के ख़ानदान में चली आ रही है।

शिर्क मिट गया

मक्का की जीत से एक नए दौर की शुरुआत हुई। वह पूरे अरब का मरकज़ था। वहाँ से मूर्ति-पूजा ख़त्म हो जाने से पूरे अरब से उसका ख़ातिमा हो गया। काबा की मूर्तियों के साथ ही पूरे अरब के बुतख़ाने मिट्टी में मिल गए। आप (सल्ल॰) मक्का में 18 दिन ठहरे।

बूढ़े मियाँ

सारे इन्तिज़ामात से फ़ुरसत हुई तो हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) अपने घर गए। बाप बूढ़े हो गए थे। आँखों से दिखाई न देता था। हाथ पकड़कर आगे-आगे चले, नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में आए। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "बूढ़े मियाँ को क्यों तकलीफ़ दी! मैं वहीं आ जाता!!" हज़रत अबू-बक्र ने फ़रमाया, "यह कैसे मुमकिन था! इन्हें तो आपके पास आना ही चाहिए था।" सामने लाकर बिठा दिया। आप (सल्ल॰) ने बड़ी मुहब्बत से उनके सीने पर हाथ रखा और कहा, "अल्लाह के दीन में दाख़िल हो जाइए, ख़ुदा आपको सलामती बख़्शेगा।" बड़े मियाँ ने इस्लाम क़बूल कर लिया। प्यारे रसूल (सल्ल॰) ने हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) को मुबारकबाद दी। बूढ़े मियाँ का नाम अबू-क़ुहाफ़ा उसमान-बिन-आमिर (रज़ि॰) था। उनका 13 हिजरी में 99 साल की उम्र में इन्तिक़ाल हुआ।

यह धाक तादाद के ज़्यादा होने की वजह से न थी

ख़न्दक़ की लड़ाई ही ने मक्का के मुशरिकों के हौसले पस्त कर दिए थे और अब उनमें मुख़ालफ़त का दम-ख़म बाक़ी न रहा था। यह धाक अब भी तादाद के ज़्यादा होने की वजह से न थी, बल्कि उस इन्तिज़ाम की थी जो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक नबी की सूझ-बूझ और समझदारी के साथ किया। यह उस जज़बे की थी, जिसने अल्लाह के हुक्म पर जीना-मरना सिखा दिया था। हुदैबिया की सुलह के मौक़े पर बातचीत में तेज़ी ज़रूर थी। हज़रत उसमान (रज़ि॰) को रोककर भी अपने तेवर दिखलाए गए थे, लेकिन

हक़ीक़त में यह एक मिटती हुई मुख़ालफ़त और बढ़ती हुई ज़ेहनी शिकस्त की निशानी थी।

मक्का की फ़तूह से पहले ही सफ़ा की पुकार से शुरू होनेवाली दुश्मनी अपने अंजाम को पहुँचकर बेहाल हो चुकी थी। फ़तूहे-मक्का के बाद क़ुरैश ही नहीं, अरब के बाक़ी तमाम क़बीलों की ताक़त ख़त्म हो गई। उनकी हिम्मत न रही कि सच्चाई और भलाई की तरफ़ बुलाने की इस दावत की राह रोककर खड़े हों, या उसे मिटाने के लिए सिर जोड़कर बैठें।

लोग अल्लाह के दीन में दाख़िल होने शुरू हुए

इधर कुछ साल जो अम्न नसीब हुआ, इसमें मुसलमानों ने काम भी ख़ूब किया। अल्लाह का दीन फैलाने की जो सुहूलत उनको मिली, उसको उन्होंने बरबाद नहीं किया। सबके पास पहुँचे। सब जगह गए, नर्मी से हिकमत व दानाई से दीन की बातें बताईं। शिर्क की ख़राबियाँ समझाईं। अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) के हुक्म पर चलने से उनकी ज़िन्दगी में जो काया पलट हुई थी, उसकी तरफ़ ध्यान दिलाया। लोगों ने ख़ुद भी देखा और परखा! बड़ी तादाद में लोग अल्लाह के दीन में दाख़िल होने शुरू हुए।

मगर एक क़बीला था!

मगर एक क़बीला था हवाज़िन का। उसके साथी ताइफ़ के कुछ क़बीले भी थे। ये लोग मक्का की फ़तूह के बाद भी नर्म न हुए। इनमें अभी कुछ दम बाक़ी था। इन्हें अपनी ताक़त का, अपने सूरमा और लड़ाकू होने का बड़ा घमण्ड था। आप (सल्ल०) मक्का के लिए रवाना हुए तब ही यह समझ बैठे थे कि उनकी तरफ़ रुख़ है। तैयारियाँ शुरू कर दी गईं। एक नव उम्र नौजवान को अपना सरदार बनाया और एक बूढ़े को उसका सलाहकार। बूढ़ा नौजवान की न माने। नौजवान बूढ़े की न सुने। ये मुसलमान थोड़े ही थे कि उनकी फ़ौज का सरदार नौजवान हो या बूढ़ा, अनसार में से हो या मुहाजिर में से, ग़ुलाम हो या आज़ाद, उसका हुक्म मानने से इनकार न करें जब तक वह अल्लाह और उसके रसूल का फ़रमाँबरदार रहे। ग़रज़ यह कि बूढ़ा कुछ कहता, जवान कुछ हाँकता। एक-दूसरे को इलज़ाम देते। आप

(सल्ल॰) मक्का ही में थे कि ख़बर मिली कि हमले की तैयारियाँ हो रही हैं।

हुनैन की लड़ाई

6 शव्वाल 8 हिजरी शनिवार, 28 जनवरी 630 ई॰ के दिन आप (सल्ल॰) मक्का से रवाना हुए। आप (सल्ल॰) के साथ बारह हज़ार मुजाहिद थे। दस हज़ार वे जो मदीना से आए थे। दो हज़ार मक्का फ़त्ह होने के बाद शामिल हो गए। ज़िरहें, तलवारें और नेज़े भी ज़रूरत-भर साथ थे। अब यह वह बग़ैर साज़ो-सामानवाली निहत्थी फ़ौज न थी, जो बद्र के मैदान में क़ुरैश की भारी फ़ौज के मुक़ाबले में उतरी थी। आप (सल्ल॰) ने अपने क़ायदे के मुताबिक़ उस फ़ौज को भी मुनज़्ज़म किया।

मिमियाती हुई बकरियाँ, बड़बड़ाते हुए ऊँट

इधर मुशरिकीन के नौजवान सरदार ने साथियों को हुक्म दिया कि बाल-बच्चे, बकरियाँ और घर-गृहस्थी अपने साथ रखें, ताकि लोग उनके ख़याल से मैदान न छोड़ें। अगली क़तार लड़नेवालों की थी। इसके बाद औरतों और बच्चों की, उनके पीछे बड़बड़ाते हुए ऊँट, मिमियाती हुई बकरियाँ और डकारते हुए बैल। बूढ़ा अन्धा था, कोई सवा सौ साल की उम्र होगी। उसने कहा, "यह क्या क़िस्सा है? यह क्या झमेला साथ लाए हो? इन सबको वापस करो।" जवान बोला, "बड़े मियाँ! चुप भी रहो। इतनी उम्र हो गई, क़ब्र में पैर लटकाए बैठे हो, फिर भी मौत का डर तुम्हें खाए जाता है।"

और हुनैन की लड़ाई में जब...

मुसलमान हुनैन के मक़ाम पर एक घाटी से निकलकर वादी में दाख़िल हो रहे थे कि चारों तरफ़ से दुश्मनों ने तीरों की बौछार शुरू कर दी। मुसलमानों ने हिम्मत से मुक़ाबला किया। दुश्मनों के पैर उखड़ गए। मुसलमानों ने सोचा कि आज हमारी तादाद के सामने कौन टिक सकता है। इस ख़याल का आना था कि हवा बदल गई। दुनिया निगाहों में तंग नज़र आने लगी। वही हुआ जो इससे पहले उहुद की लड़ाई में हुआ था। सारी

फ़ौज तितर-बितर हो गई सिवाय प्यारे नबी (सल्ल॰) और उनके कुछ जाँनिसारों के। आप (सल्ल॰) ने हज़रत अब्बास (रज़ि॰) को हुक्म दिया। उनकी आवाज़ बहुत ऊँची थी। उन्होंने पुकारा तो लोग पलटे। सौ आदमी इकट्ठा हुए और दोबारा जो हमला किया तो दुश्मन बुरी तरह हार गए। मैदान मुसलमानों के हाथ रहा। यह 10 शव्वाल 8 हिजरी, फ़रवरी 630 ई॰ की बात है।

माले-ग़नीमत में 6 हज़ार औरतें और बच्चे, चौबीस हज़ार ऊँट, चालीस हज़ार बकरियाँ और काफ़ी तादाद में चाँदी क़ब्ज़े में आई और बाँट दी गई। हवाज़िन का क़बीला वही था, जिससे आप (सल्ल॰) की दाई हलीमा ताल्लुक़ रखती थीं। मुसलमानों ने अपनी ख़ुशी से उनके घरवालों को बग़ैर किसी बदले के वापस कर दिया।

तबूक

मुअता की लड़ाई का बदला लेने के लिए ईसाई अरबों का एक बड़ा लश्कर तैयार किया गया। रूम के बादशाह क़ैसर से भी अपील की गई। उसने चालीस हज़ार फ़ौज भेजी। इरादा था कि मदीना पर हमला किया जाए। इस ख़बर से मदीना के लोग बहुत परेशान थे। आप (सल्ल॰) ने भी मुक़ाबले की तैयारी शुरू की। यह ज़माना सख़्त क़हत (सूखे) और बेइन्तिहा गर्मी का था, इसलिए फ़ौज की तैयारी में बड़ी मुश्किल पेश आई।

मुनाफ़िक़ लोगों को बहकाते थे, सख़्त गर्मी पड़ रही है, इस आफ़त में कहाँ जा रहे हो? फिर भी आप (सल्ल॰) के साथियों और उनमें से अमीर लोगों जैसे हज़रत उसमान (रज़ि॰) की कोशिश से फ़ौज का साज़ो-सामान ठीक हुआ और आप (सल्ल॰) रजब 9 हिजरी, सितम्बर-अक्तूबर 630 ई॰ को तक़रीबन 30 हज़ार का लश्कर लेकर रवाना हुए और तबूक के मक़ाम पर पहुँचकर ठहर गए। दस दिन तक आप (सल्ल॰) वहाँ ठहरे रहे। लेकिन कोई फ़ौज मुक़ाबले के लिए न आई। आप (सल्ल॰) वापस मदीना तशरीफ़ लाए। यह आख़िरी लड़ाई थी जिसमें आप (सल्ल॰) शरीक हुए।

इस फ़ौजकशी के सिलसिले में जब आप (सल्ल॰) तबूक के मक़ाम पर

पहुँचे तो लोगों ने आकर शिकायत की कि यहाँ पानी नहीं है। वुज़ू कैसे किया जाए। आप (सल्ल॰) ने दुआ फ़रमाई, तभी आसमान पर बादल छा गए। पानी बरसा। लोगों का काम चला।

अल्लाह की क़सम! मैं वही जानता हूँ जो मेरा रब मुझे बतलाता है

उसी ज़माने में नबी (सल्ल॰) की ऊँटनी खो गई। एक मुनाफ़िक़ भी साथ था। कहने लगा कि आसमानों की तो ये ख़बर देते हैं। इनको इतनी-सी बात का पता नहीं कि इनकी ऊँटनी किधर गई। (अल्लाह की पनाह!) लोगों ने आप (सल्ल॰) से जाकर कहा। आप (सल्ल॰) का चेहरा सुर्ख़ हो गया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह की क़सम! मैं वही जानता हूँ, जो मेरा रब मुझे बतलाता है। उसी ने मुझको बतलाया है कि ऊँटनी फ़ुलाँ वादी में है। उसकी नकेल पेड़ से उलझ गई है।" लोगों ने जाकर देखा ऊँटनी उसी हाल में मिली।

अबू-ज़र अकेले उठोगे

हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰) पीछे रह गए थे। उनका ऊँट चल न पाता था। पीठ पर सामान लादे चले आ रहे थे। ऊँट को छोड़ दिया। दूर से उफ़ुक़ के क़रीब एक धुंधली शक्ल हरकत करती हुई नज़र आई। लोगों ने इशारा किया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अबू-ज़र हैं, अकेले इस दुनिया में आए, अकेले ही जाएँगे।" फिर ऐसा ही हुआ। हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल हुआ तो बीवी-बच्चों के सिवा कोई पास न था। मरते वक़्त वसीयत की कि मुझे कफ़न देने के बाद जनाज़ा रास्ते में रख देना। पहला क़ाफ़िला जो इस रास्ते से गुज़रे उससे कहना कि मुझे दफ़न करने में तुम्हारी मदद करें। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) इराक़ से एक क़ाफ़िले के साथ आ रहे थे। देखते क्या हैं कि एक जनाज़ा बीच रास्ते में रखा हुआ है। क़रीब था कि काफ़िले के ऊँट तेज़ी से उसपर से गुज़र जाएँ। लड़का क़रीब आकर ठहर गया। उसने कहा, "ऐ कारवाँवालो! यह रसूल (सल्ल॰) के साथी अबू-ज़र हैं। इन्हें दफ़न करने में हमारी मदद करो। यह सुनना था कि

अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) बेइख़्तियार रो पड़े। तबूक के मक़ाम का सारा क़िस्सा आँखों में फिर गया। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने सच फ़रमाया था कि “अबू-ज़र अकेले चलोगे, अकेले मरोगे और क़ियामत के दिन अकेले ही उठाए जाओगे।” उतरे और उनको दफ़न किया।

आँखों में आँसू हैं और दिल ग़मगीन, फिर भी...

रबीउल-अव्वल 10 हिजरी, जून 631 ई॰ में नबी (सल्ल॰) के साहबज़ादे इबराहीम ने वफ़ात पाई। उनपर नज़अ़ का आलम तारी था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) के कन्धे पर सहारा देते हुए घर में दाख़िल हुए। आप (सल्ल॰) ही की गोद में साहबज़ादे ने इन्तिक़ाल किया। आप (सल्ल॰) की आँखों में आँसू देखकर अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) ने कहा, “आप तो लोगों को रोने से मना फ़रमाते हैं। फिर लोग आपको इस हाल में देखेंगे तो अपने को कैसे क़ाबू में रख सकेंगे!” आँसू थमे तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, “यह रह्म का जज़बा है। जो रह्म नहीं करता उसपर रह्म नहीं किया जाता। मैं लोगों को नौहा (मुर्दे की ख़ूबी बयान कर-कर के रोना) और चीख़-पुकार करने से रोकता हूँ। मरनेवाले की तरफ़ ऐसी ख़ूबियाँ मंसूब करके रोने से मना करता हूँ जो हक़ीक़त में उसमें न पाई जाती हों। मौत से किसको छुटकारा है! कुछ आगे गए, बादवाले उनसे जा मिलेंगे। यह तसल्ली न होती तो इससे ज़्यादा दुख होता, जितना अब है।” फिर फ़रमाया, “बेशक मुझे इसकी जुदाई पर तकलीफ़ है। आँखों में आँसू हैं और दिल ग़मगीन, फिर भी मेरी ज़ुबान पर वे बातें नहीं जो मेरे रब की नाराज़गी का सबब बन जाएँ।”

किसी की मौत से ऐसा नहीं होता

जिस दिन आप (सल्ल॰) के साहबज़ादे का इन्तिक़ाल हुआ, सूरज को ग्रहण लगा। लोगों में मशहूर हो गया कि इनकी मौत की वजह से ऐसा हुआ। इस हादसे पर सूरज भी दुखी और ग़मगीन है। आप (सल्ल॰) ने सुना तो फ़रमाया, “सूरज और चाँद में ग्रहण लगना क़ुदरते-इलाही की निशानियों में से एक निशानी है। किसी की मौत से ऐसा नहीं होता।”

आख़िरी हज

ज़िल-हिज्जा 10 हिजरी में आप (सल्ल॰) ने हिजरत के बाद अपना पहला और आख़िरी हज फ़रमाया। इसको हज्जतुल-वदाअ या आख़िरी हज इसलिए कहते हैं कि उसके ख़ुतबे में आप (सल्ल॰) ने इशारा फ़रमाया था कि यह आप (सल्ल॰) का आख़िरी हज है।

25 ज़ी-क़ादा को आप (सल्ल॰) मदीना से रवाना हुए थे। 4 ज़िल-हिज्जा की सुबह को इतवार के दिन आप (सल्ल॰) मक्का में दाख़िल हुए, आप (सल्ल॰) के साथ तक़रीबन 90 हज़ार मुसलमान हज के लिए आए थे। मक्का में और लोग भी शामिल हो गए। यमन से आनेवाले भी आ मिले। इस तरह यह तादाद बहुत ज़्यादा हो गई।

दुआ-ए-ख़लील और नवेदे-मसीहा

हिदायत का यह चिराग़ तक़रीबन 23 साल अन्धेरों से जंग करता रहा। अब इसकी रौशनी से हज़ारों दिये रौशन हो गए थे। अल्लाह का सबसे पहला घर काबा जिसकी दीवारें उठाते हुए हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने दुआ फ़रमाई—

> "ऐ रब! मैं अपने घरवालों को इस बे-आबो-गियाह सर-ज़मीन में आबाद करता हूँ, ताकि वे नमाज़ क़ायम करें, तेरी बन्दगी का निज़ाम राइज करें। ऐ रब ! इनमें एक रसूल भेज, जो उन्हें तेरी आयतें पढ़कर सुनाए। उनको तेरी किताब का इल्म और तेरी दी हुई हिकमत से मालामाल फ़रमाए।"

आज उनकी दुआ हज़ारों-लाखों इनसानों की आरज़ू बन चुकी थी। उन हाथों से उठाया हुआ घर हक़ीक़त में अल्लाह के दीन का मरकज़ बन गया। उनका बेटा, जिसको ख़ुदा ने नुबूवत की ज़िम्मेदारी अता की, उनकी दुआ को यक़ीनी शक्ल में अपने साथ लिए अल्लाह के घर के हज के लिए दाख़िल हुआ था। लोगों के दिल उसकी तरफ़ खिंचे जा रहे थे। हज़ारों इनसानों के इस मजमे की निगाह व दिल का तन्हा मरकज़ उसकी ज़ात थी, जिसने अल्लाह की मदद से लात व हुबुल के सामने झुकनेवाली इन पेशानियों को

एक .खुदा के सामने झुका दिया।

इस मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने एक .खुतबा दिया। यह .खुतबा बहुत मुनासिब और अरब व क़ुरैश में राइज बहुत-से मामलों पर इस्लामी तालीमात का निचोड़ ही नहीं, उस सिम्त की निशानदेही भी करता था, जिधर अल्लाह का दीन चाहता है कि सारी इनसानियत बग़ैर किसी रंग व नस्ल के फ़र्क़ के सफ़र करे। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

सुनो और याद रखो

1. लोगो ! ध्यान से सुनो और याद रखो। एक मुसलमान का ख़ून, माल और आबरू, दूसरे पर उसी तरह हराम है, जैसे तुम इस दिन, इस महीने और इस मक़ाम की इज़्ज़त व हुरमत करते हो। अल्लाह तआला तुम्हारे हर काम का हिसाब लेगा। ख़बरदार! मेरे बाद गुमराह न हो जाना कि एक-दूसरे की गर्दन मारने लगो।

2. जिस तरह तुम्हारे हुक़ूक़ औरतों पर हैं उसी तरह औरतों के हुक़ूक़ तुम्हारे ऊपर हैं। उनके साथ नर्मी करना और मेहरबानी से पेश आना और उनके मामले में अल्लाह से डरते रहना।

3. ग़ुलामों के साथ अच्छा सुलूक करना, जो .खुद खाओ वही उनको भी खिलाना, जो .खुद पहनो वही उनको भी पहनाना, उनसे कोई ग़लती हो तो माफ़ कर देना या उनको अलग कर देना। वे भी अल्लाह के बन्दे हैं, उनपर सख़्ती न करना।

4. न अरबी को अजमी (ग़ैर-अरबी) पर बड़ाई है, न अजमी को अरबी पर। तमाम मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं। तुम्हारे किसी भाई की कोई चीज़ तुम्हारे लिए उस वक़्त तक हलाल नहीं, जब तक वह अपनी मर्ज़ी से तुम्हें न दे दे। देखो, नाइनसाफ़ी न करना।

5. मैंने तुम्हारे बीच एक ऐसी चीज़ छोड़ी है जिसको अगर तुम मज़बूती से पकड़ोगे तो कभी गुमराह न होगे। याद रखो, वह क़ुरआन है।

6. लोगो! अमल में .खुलूस, मुसलमान भाइयों की भलाई और आपस में मेल-जोल, ये तीन चीज़ें वे हैं जो सीने को पाक रखती हैं।

7. तुमपर फ़र्ज़ है कि मेरा यह पैग़ाम उन लोगों तक पहुँचा दो, जो यहाँ मौजूद नहीं हैं, क्योंकि बहुत-से लोग दूसरों से सुनकर बात को ज़्यादा याद रखते हैं। इससे ज़्यादा जितना कि वे अपने कानों से सुनी हुई बातों को महफ़ूज़ रखते हैं।

ऐ अल्लाह! तू गवाह रह

इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने मजमे से सवाल किया, "क़ियामत के दिन अल्लाह पाक तुमसे सवाल करेगा कि मैंने उसके अहकाम तुम तक पहुँचाए या नहीं। तुम लोग इसका क्या जवाब दोगे?" सबने एक ज़ुबान होकर कहा, "ऐ अल्लाह के प्यारे रसूल! हम लोग गवाह हैं कि आपने अल्लाह के अहकाम हम तक पहुँचा दिए हैं और रिसालत का फ़र्ज़ अदा कर दिया।"

यह सुनकर आप (सल्ल॰) ने आसमान की तरफ़ देखा और हाथ उठाए और तीन बार फ़रमाया, "ऐ अल्लाह ! तू गवाह रह।"

उसी दिन क़ुरआन नाज़िल होने का सिलसिला ख़त्म हुआ। उसकी तमाम आयतें और सूरतें मुरत्तब हो चुकी थीं और बहुत-से आप (सल्ल॰) के साथी (सहाबा) क़ुरआन के हाफ़िज़ थे।

वफ़ात

सोमवार 12 रबीउल-अव्वल 11 हिजरी 8 जून 632 ई॰ को शाम के वक़्त चाँद के हिसाब से 63 साल की उम्र में आप (सल्ल॰) ने वफ़ात पाई। बीमारी के ज़माने में एक रोज़ मिम्बर पर तशरीफ़ लाए और फ़रमाया—

> "ऐ मुहाजिरीन ! अनसार के साथ भलाई से पेश आना। लोग तादाद में बढ़ते जा रहे हैं और अनसार इसी हालत में हैं, यही लोग मेरे पहले मददगार हैं। इन्हीं के यहाँ मैंने पनाह ली। इनमें से जो नेक हो उसके ऊपर एहसान करना और जो ख़ताकार हो, उसे माफ़ कर देना। मेरे घरवालों की इज़्ज़त का भी ख़याल रखना और नेकी की राह पर क़दम जमाए रखना।"

मुसलमानों के आम इज्तिमा से यह आप (सल्ल॰) का आख़िरी ख़िताब था, अल्लाह की आप (सल्ल॰) पर रहमतें और बरकतें हों!

नबी (सल्ल०) की बातें और आदतें

आप (सल्ल०) साफ़-सुथरे थे

सफ़ाई ईमान का हिस्सा है। हमारा बदन भी साफ़ होना चाहिए और कपड़े भी। इसी लिए ग़ुस्ल और वुज़ू फ़र्ज़ है। प्यारे रसूल (सल्ल०) ने मिस्वाक करने, दाँत और मुँह की सफ़ाई करने की ताकीद की है। आप (सल्ल०) ख़ुशबू लगाते थे। बालों और दाढ़ी में कँघी करते थे। झाड़ू अपने हाथ से देते थे। सफ़ाई का बेहद ख़याल था।

आप (सल्ल०) बेहूदा और बेकार बातें न करते थे

हमें भी चाहिए कि बेहूदा बातों, गाली-गलौच, बे-ज़रूरत बातों से बचें। हमारी तहरीरों, ख़तों और मज़मूनों को भी इस बुराई से पाक होना चाहिए।

किसी की बात न काटते थे

कुछ लोगों की आदत होती है दूसरा बातें कर रहा है, उसकी बात ख़त्म नहीं हुई कि झट बीच में कूद पड़े। यह दख़ल-अन्दाज़ी अच्छी नहीं, मुसलमान की शान के ख़िलाफ़ है। बात करनेवाला अपनी बात कह ले, तब बोलो।

मजलिस में पैर फैलाकर न बैठते थे

जब चार आदमियों में बैठे हों तो यह बहुत बुरी बात है कि पैर फैलाकर बैठा जाए। किसी-न-किसी तरफ़ तो तुम्हारे पैर होंगे ही और न भी हों तो यह सलीक़े और तहज़ीब के ख़िलाफ़ है। यही वजह है कि प्यारे रसूल (सल्ल०) कभी ऐसा न करते थे।

आख़िरी क़तार में बैठ जाते

जलसों और इज्तिमा में कुछ लोग देर में आने के बावजूद गर्दनें फ़लाँगते, धक्के देते आगे की सफ़ में घुसकर बैठ जाते हैं। यह बड़ी बदतमीज़ी है। ऐसा करने को लोग अपनी शान समझते हैं। उनका ख़याल है कि पीछे की लाइन में बैठना बेइज़्ज़ती की बात है। यह नासमझी है, जहाँ जगह हो, वहीं बैठ जाओ। तुम्हारी वजह से दूसरों को परेशानी न हो, जिस

जगह सफ़ें ख़त्म होती हों, वहाँ बैठना शान के ख़िलाफ़ नहीं, इनसानियत और तमीज़दारी है। प्यारे रसूल (सल्ल॰) ऐसा ही करते थे। हमें भी ऐसा ही करना चाहिए।

अपना काम ख़ुद कर लेते थे

आप (सल्ल॰) अपने जूते गाँठ लेते। कपड़ों में पैवन्द ख़ुद लगा लेते। ज़रूरत की चीज़ें बाज़ार से ख़ुद लाते। घर में झाड़ू ख़ुद दे लेते। अपना काम आप करने से अपने-आपपर भरोसा पैदा होता है। जानकारी बढ़ती है। परेशानियों पर क़ाबू पाने की आदत पड़ती है। सूझ-बूझ में ज़्यादती पैदा हो जाती है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जब कोई काम करो तो उसको ठीक से करो।" हमको ऐसा ही करना चाहिए। आख़िर आप (सल्ल॰) ही की ज़िन्दगी तो हमारे लिए नमूना है।

मुस्तक़िल मिज़ाज और साबित क़दम थे

इस्लाम-दुश्मनों ने कितना सताया, कैसे-कैसे लालच दिए। किस तरह उमड-उमडकर आए, मगर आप (सल्ल॰) अपना फ़र्ज़ अदा करने से बाज़ न आए और आख़िरकार सारे अरब को आप (सल्ल॰) की मज़बूती और इरादे के सामने झुकना पड़ा। हमें भी चाहिए कि फ़र्ज़ की राह में किसी मुश्किल, किसी तकलीफ़ और किसी परेशानी की परवाह न करें। अच्छे बनें और बनाएँ, जागें और जगाएँ, हमको कामयाबी ज़रूर मिलेगी।

तलवार नहीं उनका ज़मीर आवाज़ देता था, उनकी अक़्ल गवाही देती थी

लड़ाइयाँ तो साल-महीने में दो-एक हो जाती थीं। उनके साथ सुधार का काम भी ज़ोरों पर था। इन लड़ाइयों की वजह से नहीं, नए दीन के माननेवालों की बदली हुई ज़िन्दगी देखकर लोग मुसलमान होते चले जाते थे। मुसलमानों का रहन-सहन, मेल-मुहब्बत, सलीक़ा-तमीज़, अपनी आबादी का इन्तिज़ाम-बन्दोबस्त, बाक़ायदगी और उसूल की पाबन्दी, नेकी, भलाई, सच्चाई और ईमानदारी, इन सब बातों को लोग देखते थे, परखते थे। मदीना आकर वहाँ के रंग-ढंग और इन्तिज़ाम की ख़ूबी की जाँच करते और ज़िन्दगी के इस नए ख़ाके की तरफ़ उनका दिल खिंचा जाता। उनका ज़मीर अन्दर

के अलमबरदार बन गए। जो चोर और उचक्के थे, वे ऐसे ईमानदार हो गए कि दोस्तों के घर खाना खाने में भी उनको यह सोचना पड़ जाता कि कहीं ऐसा करना नाजाइज़ न हो। यहाँ तक कि .खुद अल्लाह तआला ने इस बारे में क़ुरआन में उन्हें इत्मीनान दिलाया। जो डाकू और लुटेरे थे, वे ईमानदार बन गए। जिनकी निगाह में इनसानी जान की कोई क़ीमत न थी, जो अपनी बेटियों को अपने हाथों से ज़िन्दा दफ़न कर देते थे, उनके अन्दर जान का इतना ज़्यादा ख़याल पैदा हो गया कि किसी मुर्ग़ को भी बेरहमी से क़त्ल होते न देख सकते थे। उनमें वे शहरी पैदा हुए, जिनके अन्दर ज़िम्मेदारी का एहसास इतना ज़्यादा था कि जिन जुर्मों की सज़ा हाथ काटने और हलाक कर देने की सूरत में दी जाती थी उनको वे .खुद आकर क़बूल कर लेते थे और इस बात के लिए ज़िद करते थे कि सज़ा देकर उन्हें गुनाह से पाक कर दिया जाए, ताकि चोर या ज़िना करनेवाले की हैसियत से .खुदा की अदालत में पेश न हों। उनमें ऐसे सिपाही पैदा हुए जो तनख़ाह लेकर न लड़ते थे, बल्कि उस अक़ीदे और उसूल के लिए लड़ते थे जिसपर वे ईमान लाए थे। अपने ख़र्च से मैदाने-जंग में जाते और फिर जो माले-ग़नीमत हाथ लगता वे सारा-का-सारा सरदार के सामने लाकर रख देते।

अब भी ऐसा हो सकता है। अगर ईमान और यक़ीन हो। दीन का इल्म और उसकी सूझ-बूझ हो। पक्का इरादा और सही फ़ैसला करने की क़ुव्वत और सलाहियत हो। ज़ाती (निजी) फ़ायदों और ज़ाती उमंगों की क़ुरबानी हो। वे बड़ी हिम्मत और हौसले के लोग हों, जो हक़ पर ईमान लाने के बाद उसपर पूरी तरह जमे रहें। किसी दूसरी चीज़ की तरफ़ ध्यान न दें। और दुनिया में चाहे कुछ भी होता हो, वे अपने रास्ते से एक इंच भी न हटें। हक़ के लिए अज़ीज़ों और दोस्तों के छूट जाने का ग़म न करें, जो चीज़ भी उनके रास्ते में आए, उसे हटा दें। ऐसे ही लोगों ने पहले भी अल्लाह का नाम ऊँचा किया था। ऐसे ही लोग आज भी करेंगे और यह काम ऐसे ही लोगों से हो सकता है—

आज भी हो जो ब्राहीम का ईमाँ पैदा।
आग कर सकती है अन्दाज़े-गुलिस्ताँ पैदा।।

★★

से कहता, उनकी अक़्ल गवाही देती। यही ठीक है, ऐसा ही होना चाहिए।

लड़ाइयाँ हुईं और उनमें हज़ार-बारह सौ आदमी मारे भी गए, मगर हुदैबिया की सुलह के ज़माने में जितने आदमी मुसलमान हुए, इससे पहले नहीं हुए। अम्न के ज़माने में लोगों को देखने-परखने का और मुसलमानों को अपनी बात कहने का मौक़ा मिला। इसी का यह नतीजा था।

इस्लाम से पहले

रेत के बड़े-बड़े समुद्रों ने सारी दुनिया से अरब देश को जुदा कर रखा था। अरब सौदागर ऊँट पर महीनों की राह तय करके इन मुल्कों में तिजारत के लिए जाते थे, मगर यह ताल्लुक़ सिर्फ़ माल को ख़रीदने और बेचने की हद तक था। ख़ुद अरबों में कोई ऊँचा रहन-सहन न था। न कोई स्कूल था, न लाइब्रेरी और न ही लोगों में तालीम की चर्चा थी।

वहाँ कोई बाक़ायदा हुकूमत भी न थी। कोई क़ानून भी न था। हर क़बीला अपनी जगह ख़ुद अपनी मरज़ी का मालिक था। आज़ादी के साथ लूटमार होती थी और आए दिन ख़ूँख़ार लड़ाइयाँ होती रहती थीं। आदमी की जान कोई क़ीमत ही न रखती थी। जिसका जिसपर बस चलता, उसे मार डालता और उसके माल पर क़ब्ज़ा कर लेता। अख़लाक़ और तहज़ीब तो वे जानते ही नहीं थे। बदकारी, शराबख़ोरी और जुएबाज़ी का बाज़ार गर्म था।

जहालत का हाल यह था कि सारी क़ौम पत्थर के बुतों को पूजती थी। रास्ता चलते में कोई अच्छा-सा चिकना पत्थर मिल जाता, उसी को सामने रखकर पूजा कर लेते थे। यानी जो गर्दनें किसी के सामने न झुकती थीं वे पत्थरों के सामने झुक जाती थीं और यह समझा जाता था कि ये पत्थर उनकी ज़रूरतें पूरी करेंगे।

इस्लाम के बाद

मुल्क का इन्तिज़ाम ही नहीं बदला, दिल व दिमाग़ और सोचने के अन्दाज़ भी बदल गए। ज़िन्दगी का ढंग बदल गया। अख़लाक़ की दुनिया बदल गई। तमाम बुरी आदतें अच्छी आदतों में बदल गईं। एक पूरी क़ौम की काया पलटकर रह गई। जो ज़िना करनेवाले थे, वे औरतों की इज़्ज़त और आबरू की हिफ़ाज़त करने लगे, जो शराबी थे वे शराब-बन्दी तहरीक